इस्लाम के दो चेहरे

डॉ. कृष्ण वल्लभ पालीवाल

2016

प्रकाशक

सुरुचि प्रकाशन

केशव कुंज, झण्डवाला,

नई दिल्ली-110055

इस्लाम के दो चेहरे

डॉ. कृष्ण वल्लभ पालीवाल

प्रकाशक

सुरुचि प्रकाशन

केशव कुंज, झण्डेवाला,

नई दिल्ली – 110055

दूरभाष : 011–23514672, 23634561

E-mail : suruchiprakashan@gmail.com

Website : www.suruchiprakashan.in

द्वितीय संस्करण : सितम्बर, 2016

मूल्य : ₹ 40

मुद्रक : गोयल एण्टरप्राइजिज

ISBN : 978-93-81500-88-0

इस्लाम
के दो चेहरे

विषय-सूची — पृष्ठ

अध्याय–1

यह पुस्तक क्यों ?

इस्लाम ने मानव समाज को दो भागों-मोमिन और काफ़िर में बांट रखा है। उसी प्रकार समय की दृष्टि से इस्लाम-पूर्व काल खंड को 'ज़हलिया' या अज्ञानता का युग और इस्लमोत्तर काल को 'चेतना' या प्रकाश का काल माना है तथा विश्व राज्यों को भी दो वर्गो 'दार-उल-इस्लाम' (इस्लामी राज्य) और 'दार उल हरब' गैर-इस्लामी राज्य यानी ऐसा राज्य जिसमें मुसलमान रहते तो हों परन्तु वहाँ इस्लामी राज्य व्यवस्था नहीं हो। ऐसे राज्यों में मुसलमानों का उद्देश्य वहाँ इस्लामी राज्य स्थापित करना होता है जैसे कि भारत, यू.के., यू.एस.ए. आदि। कहने को तो इस्लाम के पांच स्तम्भ हैं जैसे-शहदह (इस्लाम में ईमान की घोषणा), नमाज़, रोज़ा, हज्ज, और ज़कात (दान देना)। परन्तु इनमें जिहाद को जो कि उपरोक्त पांचों में से 'अल्लाह ' (*हदीस मुस्लिम खं: 1:148-149 पृ.58*) के बाद, सबसे महत्वपूर्ण है, बड़ी चतुराई से बाहर रखा गया है, जो कि इस्लाम के राजनैतिक आन्दोलन की आत्मा है। जिहाद का अर्थ है 'गैर-मुसलमानों को शान्तिपूर्ण या युद्ध द्वारा इस्लाम में धर्मान्तरित करना'। इसके बिना इस्लाम का कोई अस्तित्व ही नहीं है।

वास्तव में इस्लाम क्या है ?

1. वास्तविक व्यवहार में इस्लाम, अल्लाह के नाम पर, एक मुहम्मदीय, धर्म प्रेरित विश्व व्यापी, राजनैतिक आन्दोलन है; कुरान जिसका दर्शन, जिहाद जिसकी कार्य प्रणाली, मुसलमान जिसके सैनिक, मदरसे जिसके प्रशिक्षण केन्द्र, गैर-मुसलमान जिसके लक्ष्य और गैर-मुसलमानी राज्य जिसकी युद्ध भूमि तथा विश्व भर में इस्लामी साम्राज्य स्थापित करना जिसका एकमेव अन्तिम उद्देश्य है। इसीलिए मुसलमानों की गैर-मुसलमानों के प्रति जिहाद की यात्रा अन्तहीन और कियामत तक जारी है।

इस्लामी इतिहास बतलाता है कि जिहाद एवं इस्लाम का स्वरूप व उसकी कार्य प्रणाली अत्यन्त गोपनीय, बहुआयामी और पेचीदा रही है। उसे किसी एक स्थायी रूप का नहीं माना जा सकता है। यह समय एवं परिस्थितियों के साथ विभिन्न चरणों में बदलती रही है। जैसे पहले जिहादी गैर-मुसलमानों व उनके देश पर तलवार के बल पर कब्जा करते थे, और अब वे साम-दाम-दण्ड-भेद से वोट की राजनीति अपना रहे हैं। इसी तरह पैगम्बर मुहम्मद के तीन चेहरे हैं—पहला जन्म से लेकर इस्लाम की स्थापना (570-610 एडी) तक का पैंगन चेहरा; दूसरा मक्काई (610-622 एडी) चेहरा और तीसरा मदीनाई चेहरा (623-632 एडी)। मगर यहाँ दूसरा व तीसरा चेहरा महत्वपूर्ण है। संक्षेप में, जिहाद, इस्लाम और पैगम्बर मुहम्मद के विभिन्न चेहरे रहे हैं।

1. अतः यहाँ विचारणीय प्रश्न ये हैं कि क्या इस्लाम समस्त मानव समाज को एक समान, मानवतावादी, और कल्याणकारी उपदेश देता है ?

2. क्या इस्लाम, गैर-मुसलमानों के प्रति भेदभाव करता है ? यदि हाँ; तो क्या वह आरम्भ से ही गैर-मुसलमानों के प्रति आक्रामक और विभेदभावकारी था या यह बाद की देन है ?

3. क्या पैगम्बर मुहम्मद का व्यवहार भी गैर-मुसलमानों के प्रति समय के साथ बदलता गया ? आखिर यह कब, कैसे और क्यों हुआ ?

4. जब इस्लाम मानता है कि सारे संसार के लोगों का रचनाकार वही अल्लाह है तो अल्लाह का अपने ही पुत्रों-मुसलमानों और गैर-मुसलमानों के बीच भेदभाव क्यों है ?

5. इस्लाम और पैगम्बर के दो चेहरे क्या और क्यों हैं ?

6. कुरान अल्लाह की वाणी है। तो क्या कुरान भी गैर-मुसलमानों के प्रति भेदभाव का आदेश देती है ?

संक्षेप में यहाँ हमारा उद्देश्य यह समझने का है कि इस्लाम और पैगम्बर मुहम्मद के दो चेहरे क्या और क्यों हैं ?

7. यदि इस्लाम का उद्देश्य विश्व के समस्त गैर-मुस्लिम राज्यों को इस्लामी राज्य बनाने के लिए अन्तहीन जिहाद एवं युद्ध की घोषणा है, तो इस समस्या का समाधान क्या है ?

अध्याय–2

इस्लाम को समझने में कठिनाइयाँ

कुरान इस्लाम का मूल एवं मुख्य प्रामाणिक धर्मशास्त्र है। मुल्ला, मौलवी इस्लाम को शान्ति का मज़हब होने का दावा करते हैं तो गैर-मुसलमान इसके अन्तहीन जिहाद के ऐलान के कारण शाश्वत् युद्ध का धर्म मानते हैं। इस्लाम के, मुसलमान और गैर-मुसलमान सभी विद्वान प्रारम्भ से ही जिहाद और इस्लाम के वास्तविक और सर्व स्वीकार्य स्वरूप को समझने में अनेक प्रकार की समस्याऐं और कठिनाइयॉ अनुभव करते आ रहे हैं। खास तौर पर, कुरान के रचनाकार, इसकी पूर्णता, मौलिकता, भाषा, आयतों के अवतरण की निस्संदेहता, उनका निरस्तीकरण आदि इसके मुख्य कारण हैं। इसके अलावा कुछ कठिनाइयाँ आयतों के प्रारम्भ में 'कहो' शब्द जोड़ने से है जो कि आज भी रहस्यमय बना हुआ है (*बाकर, पृ.152-170*)

संक्षेप में कुरान को समझने में मुख्य कठिनाइयां निम्नलिखित हैं–

पहली–यह सुनिश्चित नहीं है कि जो सारी कुरान अल्लाह की एक विशेष पेटी में सुरक्षित है (43:4; 85:21-22) पूरी की पूरी पैगम्बर मुहम्मद को अवतरित हो गई थी, या नहीं ?

दूसरी–अल्लाह ने सारी कुरान प्रारम्भ में ही फरिश्ते जिब्रील, स्वतः प्रेरणा या अन्य माध्यमों द्वारा पैगम्बर मुहम्मद पर अवतरित क्यों नहीं कर दी ? उसने विभिन्न अन्तरालों के साथ और बेतुके समयों पर क्यों अवतरित की? अल्लाह ने ये आयतें मुहम्मद को 5, अगस्त 610 एडी को अपना रसूल घोषित करने के बाद, उनके अन्तिम दिन 8जून 632 एडी तक यानी बाईस साल चार माह तक टुकड़ों-टुकड़ों में क्यों नाज़िल की ? पहले सूरा (संख्या 96) के बाद तो अगला कोई सूरा तीन साल तक-नाज़िल-ही नहीं हुआ जिसके कारण विषय की अनवरता छिन्न-भिन्न हो गई।

तीसरी–कोई नहीं जानता कि सबसे पहली आयत जिसमें अल्लाह ने मुहम्मद साहब को अपना रसूल बनाया किसने लिखी ? क्योंकि वे

स्वयं तो अनपढ़ थे और हीरा नामक गुफा, जिसमें यह आयत नाज़िल हुई एवं फरिश्ते ने यह सन्देश उन्हें दिया, तब वहाँ कोई और व्यक्ति नहीं था।

चौथी—हम सुनिश्चित नहीं हैं कि जो आयतें मुहम्मद साहब पर बेतुके समय-जैसे बाहर घोड़े पर सवार, अपने बाल धोते समय या भोजन करते हुए अथवा सार्वजनिक सभाओं के प्रश्नों के उत्तर एवं श्री मती आयशा के सानिध्य में,जब जिबरिल रोजाना उंनके पास आता था, क्या वे सब नाजिल हुई, आयतें कुरान में शामिल हैं ? (*बैंसिक,पृ. 24, वाकर, पृ. 148*)

पांचवीं—हम सुनिश्चित नहीं है कि जितनी भी आयतें पैगम्बर मुहम्मद पर नाजिल हुई वे सभी वर्तमान कुरान में सम्मिलित हैं क्योंकि न तो पैगम्बर मुहम्मद स्वयं शिक्षित थे, और न उन्होंने नाज़िल होते ही तत्काल उनके लिखने की कोई व्यवस्था ही की थी। इसके अलावा मुहम्मद साहब भूल भी जाते थे (*बुखारी रवं. 6:558, 562, पृ. 508-509*)। उनके निधन के बाद जो कुछ भी सामग्री समतल पत्थर की शिलाओं, लकड़ी की प्लेटों, पार्चमेंट पेपर के टुकड़ों, खजूर की पत्तियों, जानवरों के सींगों व कंधों की चौड़ी हड्डियों व चमड़े के टुकडों पर और श्रृद्धालु मुसलमानों की स्मृति में बसी थी, उन्हीं को पहले खलीफ़ा अबू बकर के आदेश पर इब्न थाबेत ने इकट्ठा किया था। बाद में तीसरे खलीफ़ा उस्मान (643-656 एडी) ने जैद बिन थाबेत, अब्दुल्ला इब्न जुवेर, साद इब्न अलआस और अब्दुलरहमान इब्न अल हरीश की एक समिति को अन्तिम रूप देने के लिए गठित की, और उन्हें आदेश दिया गया कि यदि भाषा सम्बंधी कोई कठिनाई आए तो कुरेशी अरबी भाषा को प्राथमिकता दी जाए। इस प्रकार 655 एडी में सबसे पहले कुरान का पहला संस्करण सम्पादित किया गया और साथ ही कुरान के उस समय उपलब्ध अन्य संग्रहों को नष्ट करने का आदेश दिया गया। जैसे कि अली अबू तालेब अली के संग्रह, को, नष्ट कर दिया गया। (*दाष्टी,पृ. 78*)

छठी—इसके अलावा यमामा की लड़ाई में मारे गए पैगम्बर के साथियों जिन्हें कुरान के अंश याद थे तथा खजूर के पत्तों पर लिखी

आयतों को पैगम्बर के घर में जानवर खा गए (*दाष्टी, पृ. 18*)। अतः हम नहीं जानते उनमें क्या था, जो हमने खोया।

सातवीं—इन बातों के अलावा कुरान को समझने में जो सबसे बड़ी कठिनाई है वह यह है कि कुरान के सूरा उनके अवतरण कम के अनुसार सम्पादित नहीं हैं। बल्कि सम्पादन कमेटी की स्वेच्छित नीति के आधार पर रखे प्रतीत होते हैं। हम उनकी सूरा क्रम निर्धारण नीति को भी नहीं जानते। शायद पहले सूरा को छोड़कर अन्य सूरा उनकी लम्बाई के आधार पर रखे गए प्रतीत होते हैं,चाहे वे पैगम्बर साहब पर कभी भी, क्यों न अवतरित हुए हों। इस नीति का परिणाम यह हुआ कि बाद में यानी मदीना में अवतरित सूरा जो मक्काई सूराओं से अधिक लम्बे हैं और राजनैतिक तत्वों और गैर-मुसलमानों से युद्ध के सन्देशों से भरे पड़े हैं, कुरान में पहले रखे हुए हैं और मक्काई सूरा जो छोटे हैं,बाद में रखे हुए हैं। इस नीति के कारण कुछ सूरा जैसे सूरा 2 और 3 मिश्रित हैं। यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि कुरान के सम्पादकों ने सूराओं को उनके अवतरण काल-क्रम के अनुसार नहीं रखा जो कि स्वाभाविक और हर दृष्टि से तर्क संगत व उचित था। वर्तमान सम्पादन विधि के परिणामस्वरूप यह समझ पाना अत्यन्त कठिन है कि किस विषय और किस परिस्थिति में, अल्लाह ने, उन समस्याओं का क्या समाधान दिया।

आठवीं—कुरान से यह भी पता नहीं चलता कि कौन-सा सूरा और आयत किस संदर्भ में है। आयतों के संदर्भीकरण के अभाव में कुरान के भाष्य में अनेक विसंगतियां रही हैं जिसके परिणाम-स्वरूप पारस्परिक विषय विरोध होना स्वाभाविक है।

नवीं— कुछ विद्वान तर्क देते हैं कि कुरान में अनेक विसंगतियां और परस्पर विरोध, आयतों के निरस्तीकरण के सिद्धान्त के कारण है, जो कहता है कि अल्लाह आवश्यकतानुसार पिछली अवतरित आयतों को या तो उनको बिल्कुल निरस्त कर देता है या उनकी जगह दूसरी भेज देता है (2:1063, 13:39)। परन्तु दुर्भाग्य से अल्लाह ने कहीं यह नहीं बतलाया कि अमुक आयत को निरस्तकर के उसकी जगह अमुक आयत भेजी जा रही है। वैसे सर्वज्ञ अल्लाह के लिए अपने पूर्व निर्णय को बदलने की नीति ने उसकी सर्वज्ञता पर भी सवालिया निशान अवश्य लगा दिया है।

उपरोक्त समस्याओं के कारण यदि कुरान के पाठकों को जिहाद एवं अन्य विषयों में भ्रम होता है, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि पहले तो निरस्त आयतों की संख्या निश्चित नहीं है। फिर प्रत्येक पाठक आयतों के संदर्भीकरण और निरस्तीकरण को अपनी रीति, नीति और उद्देश्य के अनुसार प्रयोग या तिरस्कार स्वीकार करता है।

सूराओं का तैथिक क्रम (नाज़िल होने के समय का क्रम)

उपरोक्त समस्याओं को देखते हुए अनेक विद्वानों ने कुरान के सूराओं के तैथिक क्रम को खोजने के गम्भीर प्रयास किए है ताकि जिहाद और इस्लाम के विकास क्रम को सही स्वरूप में समझा जा सके।

प्रो. सैल ने मक्का और मदीना में विभिन्न काल खंडों में अवतरित सूराओं का पता लगाने का गम्भीर प्रयास किया है (तालिका 1)

तालिका 1. **मक्का और मदीना में विभिन्न कालों में अवतरित कुरान के सूरा** (कैनन सैल-दी हिस्टोरिकल डवलपमेंट आफ़ कुरान, 1923 पृ. VII-VIII)

1. पहला काल खंड	मक्काई सूरा
(610-617 ए.डी.)	96, 74, 111, 106, 108, 104, 107, 102, 105, 92, 90, 94, 93, 97, 86, 91, 80, 68, 87, 95, 103, 85, 73, 101, 99, 82, 81, 53, 84, 100, 79, 77, 78, 88, 89, 75, 83, 69, 51, 52, 56, 70, 55, 112, 109, 113, 114, 1=48
2. दूसरा काल खंड (617-619 ए.डी.)	54, 37, 71, 76, 44, 50, 20, 26, 15, 19, 38, 36, 43, 72, 67, 23, 21, 25, 17, 27, 18=21
3. तीसरा काल खंड (619-622 ए.डी.)	32, 41, 45, 16, 30, 11, 14, 12, 40, 28, 39, 29, 31, 42, 10, 34, 35, 7, 46, 6, 13=21
4. चौथा काल खंड	मदीनाई सूरा
(622-632 ए.डी.)	2, 98, 64, 62, 8, 47, 3, 61, 57, 4, 65, 59, 33, 63, 24, 58, 22, 48, 66, 110, 49, 9, 5=24

अधिकांश विद्वानों का मत है कि कुरान के कुल 114 सूराओं में से 85 से 90 सूरा मक्का और शेष (29-24) मदीना में अवतरित हुए हैं। इनमें से जिहाद सम्बंधी आयतें केवल मक्काई दो सूराओं में और 19 मदीनाई सूराआ में हैं। मोरे (पृ. 336) ने जिहाद सम्बंधी मदीनाई सूराओं के तैथिक क्रम को इस प्रकार दिया है:- 22,2,28,47,3,61,57,4,59,33, 63,24,58,48,66,60,49,5 और 9 । परन्तु सूराओं के तैथिक क्रम के विषय में विद्वानों में काफ़ी मतभेद है। यहाँ हमने चार प्रमुख विद्वानों के सूराओं के तैथिक क्रम को प्रस्तुत किया है (*तालिका 2*)। हालांकि समस्त तैथिक क्रमों में अन्तर है परन्तु इस्लाम के प्राचीन और आधुनिक सभी विद्वान मानते है कि सूरा 9 अन्तिम है, जिसमें जिहाद सम्बंधी आयतें सबसे ज्यादा हैं, जो कि मुसलमानों के लिए अल्लाह का अनिवार्य और अन्तिम आदेश है।

इतनी अड़चनें होते हुए भी, गैर-मुसलमानों के प्रति जिहाद-यानी सशस्त्र युद्ध की अवधारणा को ठीक रूप से समझने के लिए पैगम्बर मुहम्मद पर मक्का और मदीना में अवतरित जिहाद सम्बंधी आयतों के अध्ययन से समझा जा सकता है, न कि मन चाहे तरीके से, जैसाकि इस्लाम के आलोचक और समर्थक दोनों ही अक्सर करते रहते हैं।

तालिका 2. विभिन्न विद्वानों द्वारा कुरान के सूराओं के अवतरण का अनुमोदित तैथिक काल क्रम (*सैल वही पृ. 203-204*)

सूरा संख्या	जलालुद्दीन सुयूती	नौलडेक	म्यूर	रौडवैल *
1	96	96	103	8
2	68	74	100	91
3	73	111	99	97
4	74	106	91	100
5	111	108	106	114
6	81	104	1	89
7	87	107	101	87
8	92	102	95	95
9	89	105	102	113

10	93	92	104	84
11	94	90	82	75
12	103	94	92	77
13	100	93	105	90
14	108	97	80	76
15	102	86	90	57
16	107	91	93	73
17	109	80	94	67
18	105	68	108	69
19	113	87	96	58
20	114	95	113	55
21	112	103	74	65
22	53	85	111	107
23	80	73	87	64
24	97	101	97	105
25	91	99	88	66
26	85	82	80	56
27	95	81	81	68
28	106	53	84	79
29	101	84	86	81
30	75	100	110	74
31	104	79	85	82
32	77	77	83	70
33	50	78	78	103
34	90	88	77	85
35	86	89	76	86
36	54	75	75	60
37	38	83	70	50
38	7	69	100	59

39	72	51	107	80
40	36	52	55	78
41	25	56	56	71
42	35	70	67	83
43	19	55	53	61
44	20	112	32	53
45	56	109	39	72
46	26	113	73	88
47	27	114	79	96
48	28	1	54	108
49	17	54	34	112
50	10	37	31	54
51	11	71	69	43
52	12	76	68	44
53	15	44	41	46
54	6	50	71	49
55	37	20	52	48
56	31	26	50	45
57	34	15	45	99
58	39	19	44	106
59	40	38	37	102
60	41	36	30	110
61	42	43	26	98
62	43	72	15	94
63	44	67	50	104
64	45	23	46	93
65	46	21	72	101
66	51	25	35	109
67	88	17	36	63
68	18	27	19	17

69	16	18	18	42
70	71	32	27	47
71	14	41	42	51
72	21	45	40	62
73	23	16	38	3
74	32	30	25	2
75	52	11	20	40
76	67	14	43	52
77	69	12	12	36
78	70	40	11	37
79	78	28	10	35
80	79	39	14	24
81	82	29	6	32
82	84	31	64	31
83	30	42	28	41
84	29	10	23	33
85	83	34	22	28
86	2	35	21	22
87	8	7	17	25
88	3	46	16	38
89	33	6	13	39
90	60	13	20	18
91	4	2	7	23
92	90	98	113	16
93	57	64	114	4
94	47	62	98	5
95	62	8	2	26
96	55	47	3	1
97	76	3	8	21
98	13	61	47	92

99	98	57	62	30
100	59	4	5	34
101	110	65	59	29
102	24	59	4	14
103	22	33	58	27
104	63	63	65	18
105	58	24	63	19
106	49	58	24	20
107	66	22	33	14
108	65	48	57	12
109	64	66	61	9
110	61	60	48	111
111	48	110	60	11
112	5	49	66	10
113	9	9	49	6
114	1	5	9	7

* रौडबेल – मोरे (पृ. 590)

स्वामी विवेकानंद–"भारत में विदेशी आक्रान्ताओं की, सैकड़ों वर्षों तक लगातार, एक के बाद एक लहर आती रही और भारत को तोड़ती और नष्ट-भ्रष्ट करती रही। यहाँ तलवारें चमकीं और '*अल्लाह के लिए लड़ो और जीतो*' के नारों से भारत का आकाश गूंजता रहा। लेकिन ये बाढ़ें भारत के आदर्शों को बिना परिवर्तित किए, स्वतः ही धीरे-धीरे समाप्त होती गईं।" (*स्वामी विवेकानंद वांगमय, खंड 4:159*)

अध्याय–3

इस्लाम की यात्रा-शान्तिपूर्ण से आतंकवाद तक

कुरान, हदीसों और पैगम्बर मुहम्मद की जीवनी के सूक्ष्म अध्ययन से साफ़ पता चलता है कि जिहाद जो कि इस्लाम का क्रिया रूप है, की अवधारणा और इसके अपनाने की विधियां सदैव एक-सी नहीं रहीं हैं बल्कि समय व शक्ति के साथ इनमें व्यापक परिवर्तन हुए हैं तथा धीरे-धीरे विभिन्न चरणों में होकर गुज़री हैं। इस्लाम के सभी विद्वान मानते हैं कि प्रारम्भिक काल-मक्का में इस्लाम का स्वरूप शान्तिपूर्ण था जिसमें समझाने-बुझाने एवं अपने श्रेष्ठ आचरण द्वारा प्रभावित कर गैर-मुसलमानों को इस्लाम स्वीकार कराने पर बल दिया गया है परन्तु मदीना में जाकर इस्लाम का स्वरूप तानाशाही और आंतकवादी हो गया। मक्का और मदीना में अवतरित आयतों के स्वभाव, लम्बाई, विषय सामग्री व कथनों में महान अन्तर है बल्कि कुछ तो पारस्परिक विरोधी भी हैं। यह एक दूसरी बात है कि विद्वानों में इस विषय में मतभेद है कि यह परिवर्तन कितने चरणों में हुआ—तीन, चार या अधिक में। वास्तव में इस्लाम का स्वरूप जिहाद के स्वरूप के साथ-साथ बदलता गया।

1. जिहाद की यात्रा- तीन चरणों में

हदीस सही बुखारी की प्रस्तावना में पवित्र मक्का मस्जिद के इमाम शेख अब्दुल्ला बिन मुहम्मद बिन हामिद के विचारों को भाष्यकार डा. एम.एम.खां. लिखता है कि पहले अल्लाह ने मुसलमानों को जिहाद में गैर-मुसलमानों से लड़ने को मना किया, फिर आज्ञा दी और बाद में मुसलमानों को (गैर-मुसलमानों से) लड़ना एक आवश्यक कर्त्तव्य कर दिया। "लड़ो, उनके विरूद्ध जो तुमसे (मुसलमानों) से लड़ना प्रारम्भ करें और उन के विरूद्ध जो अल्लाह के साथ अन्यों को पूजते हैं" जैसाकि सूरा 2,3 और 9 में कहा गया है। बाद में अल्लाह ने मुसलमानों के लिए गैर-मुसलमानों (हिन्दू ,बौद्ध, ईसाई, यहूदी, नास्तिक आदि) सभी के

विरूद्ध सशस्त्र युद्ध करने का आदेश दे दिया (9:29), "यदि वे इस्लाम स्वीकार न करें।" (सही बुखारी खं. 1, पृ. XXIV-XXVI)

2. जिहाद की यात्रा-चार चरणों में

मिश्र के आधुनिक विद्वान सैयद कुत्ब (1906-1966) ने अपनी पुस्तक '*माइल स्टोन्स*' में जिहाद की इस यात्रा को चार चरणों का माना है—पहली—प्रारम्भिक अवस्था जब मुसलमान मक्का में थे तो अल्लाह ने उन्हें गैर-मुसलमानों से युद्ध करने की आज्ञा नहीं दी। दूसरी-अवस्था जब मदीना में हिजरत करने के बाद मुसलमानों को सताने वालों के विरूद्ध लड़ने की आज्ञा उन्हें दी गई जो लड़ना चाहे। तीसरी अवस्था में अल्लाह ने उनसे लड़ने की आज्ञा दी जो उनसे लड़ें और चौथी अवस्था में अल्लाह ने मुसलमानों को उन सभी गैर-मुसलमानों से युद्ध करने का आदेश दिया, जो इस्लाम स्वीकार न करें, ताकि विश्वभर में इस्लाम भलीभांति स्थापित हो जाए। (पृ. 53)

यहाँ कुत्ब का यह भी मानना है कि जिहाद के इस विकास क्रम में पिछली अवस्था व उसकी आयतें अपने-आप ही निरस्त हो जाती हैं। केवल चौथी, अन्तिम अवस्था ही स्थायी रूप से मान्य बाकी रह जाती है। इसके पक्ष में वे कुरान की कुछ आयतें (4:74; 8:38-40; 9.5, 9:26-32) भी प्रस्तुत करते हैं। (वही पृ. 63)

(2) ब्रिल के 'एन्साइक्लोपीडिया' के अनुसार भी शान्तिपूर्ण जिहाद स्थायी एवं आक्रामक जिहाद में चार चरणों में परिवर्तित हो जाती है। सार की बात यह है कि इन विभिन्न चरणों में अन्तर होने के मुख्य कारण पैगम्बर मुहम्मद के चिन्तन में विकास और विभिन्न परिस्थितियों में नीति परिवर्तन के कारण हैं। (*जिहाद जुगरनौट*, पृ. 56)

3. जिहाद की यात्रा—पांच चरणों में

प्रो. लोखंडवाला के अनुसार मुस्लिम विधि वेत्ता जिहाद को पांच स्तरों में विभाजित करते हैं और अन्तिम पांचवी अवस्था को ही विधि सम्मत मानते हैं यानी पिछली अवस्थाओं के आदेशों को वे निरस्त मानते हैं। ये पांच अवस्थाऐं हैं : पहली (610 - 613 डी) विश्वास, क्षमा और

समर्पण की, दूसरी (613-622 एडी) गैर-मुसलमानों को इस्लाम स्वीकारने को आमंत्रित करने की, तीसरी (622-624 एडी) आत्मरक्षा के लिए लड़ने की, चौथी (624-630 एडी) निश्चित समय पर आक्रामक युद्ध की, और पांचवीं (630-632 एडी) अवस्था विश्वभर के गैर-मुसलमानों के विरूद्ध सामान्य आक्रामक युद्ध की (*इंजीनियर एवं शाकिर, कम्युनलिज्म इन इंडिया, पृ. 5; मोरे, पृ. 219-220*)

4. जिहाद की यात्रा-छः चरणों में

हमारे विचार से, इस्लामी जिहाद ने अपने शान्तिपूर्ण स्वरूप से विश्वव्यापी, सशस्त्र, आक्रामक और स्थायी युद्ध की 610 से 632 एडी तक की यात्रा, छः चरणों में पूरी की है। इनमें से जिहाद की पहली गोपनीय अवस्था (610-613 एडी) और दूसरी सार्वजनिक प्रचार की अवस्था (614 -622 एडी) मक्का में रही, तथा तीसरी स्वेच्छा से युद्ध की अनुमति की अवस्था (622 - 624 एडी), चौथी सशर्त युद्ध की अवस्था (624-625 एडी), पांचवी बिना शर्त सशस्त्र युद्ध की अवस्था (625 -630एडी) और छठी और अन्तिम,सशस्त्र आक्रामक एवं स्थायी युद्ध की अवस्था (630-632 एडी) मदीना में रही। विद्वानों ने गैर-मुसलमानों के विरूद्ध जिहाद करने के लिए केवल स्थायी आक्रामक युद्ध की छठी अवस्था को ही प्रभावी और प्रामाणिक माना है। हमारा कहना है कि चाहे जिहाद की यात्रा तीन चरणों में पूरी हो या छः में, सबको केवल अन्तिम चरण ही मान्य है।जिहाद की उपरोक्त छः अवस्थाओं की पुष्टि नीचे लिखीं क़ुरान की आयतों से होती है।

पहली गोपनीय अवस्था (*610-613* एडी)

(*i*) अगस्त *610* एडी में नबूवत की घोषणा के बाद पैगम्बर मुहम्मद ने व्यक्ति गत सम्पर्क द्वारा कुछ लोगों के बीच गोपनीय ढंग में इस्लाम का सन्देश देना प्रारम्भ किया। इन तीन-चार सालों में जब उसके अनुयायियों की संख्या बढ़कर 38 हो गई (*मोरे, पृ. 48*) तो अबूबकर और उमर ने इस्लाम का सार्वजनिक रूप से प्रचार करने पर बल दिया। पर मुहम्मद ने मना करते हुए कहाः "अभी हम संख्या में बहुत कम हैं"

(*वहीदुद्दीन. पृ. 116*)। हालांकि इस काल खंड में अवतरित आयतों में जिहाद शब्द का उल्लेख है, मगर यहाँ जिहाद का अर्थ शान्तिपूर्ण ढंग से इस्लाम के नियमों का पालन करने का प्रयास करना है। यहाँ केवल एक ही ईश्वर को पूजने, मुहम्मद को रसूल स्वीकारने, कुरान को ईश्वरीय ग्रंथ मानने, विरोधियों के सामने शान्ति और सहनशीलता के साथ अपनी बात कहना, आखिरत और कियामत आदि पर बल देना मुख्य हैं जो कि निम्नलिखित आयतों से सुस्पष्ट है। (नोट : सभी आयतों का अनुवाद-पवित्र कुरान, अनु.मौलाना मुहम्मद फारुक़खाँ और डा. मुहम्मद अहमद, प्रकाशक मधुर संदेश संगम (2005) नई दिल्ली, से लिया गया है)

(*ii*) "जो व्यक्ति (अल्लाह के मार्ग में) संघर्ष करता है वह तो स्वयं अपने ही लिए संघर्ष करता है। निश्चय ही अल्लाह सारे संसार से निस्पृह है।" (29 : 6 , पृ. 347)

(*iii*) "हमने मनुष्य को अपने मां-बाप के साथ अच्छा व्यवहार करने की ताकीद की है। किन्तु यदि वे तुम पर ज़ोर डालें कि तू किसी ऐसी चीज़ को मेरा साझी ठहराए जिसका तुझे कोई ज्ञान नहीं, तो उनकी बात न मान।" (29:8, पृ. 347)

(*iv*) 'किताब वालो' से बस उत्तम रीति से वाद-विवाद करो-रहे वे लोग जो उनमें जालिम हैं, उनकी बात दूसरी है—और कहो: "हम ईमान लाए उस चीज़ पर जो हमारी ओर अवतरित हुई और तुम्हारे ओर भी अवतरित हुई। हमारा पूज्य और तुम्हारा पूज्य अकेला ही है और हम उसी के आज्ञाकारी हैं।" (29:46, पृ. 351)

(*v*) "वे जो कुछ कहते हैं उस पर धैर्य से काम लो और ज़ोर व शक्ति वाले हमारे बन्दे दाऊद को याद करो।" (38:17, पृ.402)

(*vi*) "अतः इनकार करने वालों की बात न मानना और इस (क़ुरआन) के द्वारा उनसे जिहाद करो', बड़ा जिहाद (यानी जी तोड़ कोशिश)।" (25:52, पृ.315)

(*vii*) 'अपने रब का फ़ैसला आने तक धैर्य से काम लो, तुम तो हमारी ऑखों में हो।' (52:48, पृ.475)

(*viii*) "और जो कुछ वे कहते हैं उस पर धैर्य से काम लो और भली रीति से उनसे अलग हो जाओ और तुम मुझे और झुठलाने वाले सुख सम्पन्न लोगों को छोड़ दो और उन्हें थोड़ी मुहलत दो।" (73:10-11, पृ. 536)

दूसरी सार्वजनिक प्रचार की अवस्था (614-622 एडी)

जब पैगम्बर मुहम्मद के अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी तो उन्होंने कुरान के आदेशों का खुलकर प्रचार करना प्रारम्भ किया, तथा अल्लाह के साथ अन्य देवी-देवताओं की पूजा करने की, जो कि काबा मस्जिद में होती थी, की निन्दा की; साथ ही स्वयं को पैगम्बर मानने पर बल दिया। हालांकि पचहत्तर प्रतिशत कुरान मक्का में अवतरित हुई थी और उसमें कुछ आयतों में 'अल्लाह के लिए जिहाद' के संदेश भी हैं परन्तु मक्का की आयतों में गैर-मुस्लिमों के विरूद्ध सशस्त्र युद्ध की आज्ञा नहीं दी गई है। यहाँ इतना अवश्य है कि काबा में विद्यमान देवी देवताओं की पूजा की आलोचना से कुरेश, जिनका कि काबा मस्जिद के प्रबन्ध पर अधिकार था, मुहम्मद के विरोधी हो गए। लेकिन मुहम्मद ने अपने साथियों से सब्र, शान्ति एवं बातचीत द्वारा इस्लाम का सन्देश देने की अपील की। जैसाकि नीचे की आयतों से स्पष्ट है:

(*i*) "अतः तुम्हें जिस चीज़ का आदेश हुआ है उसे हाँक-पुकार कर बयान कर दो और मुशरिकों की ओर ध्यान न दो।" (15:94, पृ.225)

(*ii*) "अपने रब के मार्ग की ओर तत्त्व-दर्शिता और सदुपदेश के साथ बुलाओ और उनसे ऐसे ढंग से वाद-विवाद करो जो उत्तम हो।" (16:125, पृ.237)

(*iii*) "और यदि तुम उनसे बदला लो तो उतना ही जितना तुम्हें कष्ट पहुंचा हो किन्तु यदि तुम सब्र करो तो निश्चय ही यह सब्र करने वालों के लिए ज्यादा अच्छा है।" (16:126, पृ.237)

(*iv*) "कह दोः ऐ इनकार करने वालो ! मैं वैसी बन्दगी नहीं करूंगा जैसी बन्दगी तुम करते हो और न तुम वैसी बन्दगी करने वाले हो जैसी

बन्दगी मैं करता हूँ और न मैं वैसी बन्दगी करने वाला हूँ जैसी बंदगी तुमने की है और न तुम वैसी बन्दगी करने वाले हुए जैसी बन्दगी मैं करता हूँ। तुम्हारे लिए तुम्हारा धर्म है और मेरे लिए मेरा धर्म।" (109:1-6, पृ.588)

(*v*) "उसने कहा" फिर क्या तुम अल्लाह से इतर उसे पूजते हो जो न तुम्हें कुछ लाभ पहुँचा सके और न तुम्हें कोई हानि पहुँचा सके ? (21:66, पृ.282)

(*vi*) "धिक्कार है तुम पर, और उन पर भी, जिनको तुम अल्लाह को छोड़कर पूजते हो ! तो क्या तुम बुद्धि से काम नहीं लेते ? (21:67, पृ.282)

(*vii*) "मूर्त्तियों की गन्दगी से बचो और बचो झूठी बात से।" (22:30, पृ.289)

तीसरी अवस्था-स्वेच्छा से लड़ने की अनुमति (623–624 एडी)

पैगम्बर मुहम्मद के मदीना में पहुंचने के बाद, अल्लाह ने मुसलमानों को, जो अपने विरोधियों से स्वेच्छा से लड़ना चाहें, उनको लड़ने की अनुमति दे दी :

(*i*) "अनुमति दी गई (लड़ने की) उन लोगों को जिन के विरूद्ध युद्ध किया जा रहा है क्योंकि उन पर जुल्म किया गया और निश्चय ही अल्लाह उनकी सहायता की पूरी सामर्थ्य रखता है। ये वे लोग हैं जो अपने घरों से नाहक निकाले गए केवल इसलिए कि वे कहते हैं कि "हमारा 'रब' अल्लाह है।" (22:39-40, पृ.290)

(*ii*) "जिन लागों ने अल्लाह के मार्ग में घर बार छोड़ा, फिर मारे गए या मर गए, अल्लाह अवश्य उन्हें अच्छी आजीविका प्रदान करेगा।" (22:58, पृ.291)

(*iii*) "परस्पर मिलकर 'जिहाद करो' अल्लाह के मार्ग में' जैसा कि 'जिहाद' का हक है। उसने तुम्हें चुन लिया है और धर्म के मामले में तुम पर कोई तंगी और कठिनाई नहीं रखी।" (22:78, पृ. 293)

इस्लामी इतिहास से यह पता नहीं चलता कि मुसलमानों को कुरेशों से लड़ने की अनुमति किस तारीख को दी गई। मगर यह तारीख बद्र की लड़ाई (624 एडी) से पहले की प्रतीत होती है, जब तक पैगम्बर मुहम्मद ने सैनिक तैयारी काफ़ी कर ली थी।

यहाँ विचारणीय यह है कि उपरोक्त आयतों (22:39-40) में मुसलमानों को मक्का के गैर-मुसलमानों के विरूद्ध युद्ध करने की अनुमति दी गई है जिन्होंने मुसलमानों को मक्का में अपने घर छोड़ने को विवश किया था। मगर सच तो यह है कि मक्का के कुरेशों ने न तो मक्का और न मदीना के मुसलमानों पर कोई युद्ध या अत्याचार किया। मक्का के मुसलमान तो स्वयं अल्लाह के आदेश पर हिज़रा करके मदीना आए थे। अतः मक्का से आकर मदीना में बसने वाले मुसलमानों और मदीना के अंसारों को मक्का के कुरेशों के विरूद्ध युद्ध करने की अनुमति देना तो कुरेशों को सताना था, उनसे बदला लेने के समान है। यह आत्मरक्षा नहीं बल्कि बदले की भावना से प्रेरित ही समझा जाएगा।

चौथी अवस्था सशर्त युद्ध की आज्ञा (624-626 एडी)

बद्र की लड़ाई के बाद, मुसलमानों को गैर-मुसलमानों से सशर्त युद्ध की आज्ञा दी गई। पहले तो केवल कुरेश,जोकि मूर्त्ति पूजक थे, वे ही शत्रु थे, परन्तु उहद की लड़ाई के बाद (624 एडी) अब कुछ बहुरूपये मुसलमान भी मुसलमानों के शत्रु हो गए। इसी तरह मक्का और मदीना के प्रारम्भिक काल तक में यहूदी शत्रु नहीं थे, बल्कि दोनों का किब्ला (जेरूसलेम) एक ही था जो 11.2.624 तक रहा। परन्तु धीरे-धीरे वे भी शत्रु हो गए। अतः 624 के बाद अल्लाह ने मुसलमानों को उनसे भी युद्ध की आज्ञा दे दी।

अतः जिहाद की इस चौथी अवस्था में अल्लाह ने मुसलमानों को आज्ञा दी कि वे मानसिक, शारीरिक एवं युद्ध सामग्री सहित सब प्रकार से गैर-मुसलमानों से सशर्त युद्ध करने की पूरी तैयारी करें और यदि वे शान्ति स्थापित एवं सन्धि करने को कहें तो उसे स्वीकार कर लो।

(*i*) "और अल्लाह के मार्ग में उन लोगों से लड़ो जो तुमसे लड़ें किन्तु ज्यादती न करो।" "और जहाँ कहीं उन पर काबू पाओ, कत्ल

करो, और उन्हें निकालो जहाँ से उन्होंने तुम्हें निकाला है। इसलिए कि फ़ितना (उत्पीड़न) कत्ल से भी बढ़कर गम्भीर है। लेकिन मस्जिदे हराम (काबा) के निकट तुम उनसे न लड़ो जब तक कि वे स्वयं तुमसे युद्ध न करें। अतः यदि वे तुम से युद्ध करें तो उन्हें कत्ल करो-ऐसे इनकारियों का ऐसा ही बदला है।" (2:190-191, पृ.29)

(*ii*) "तुम उनसे लड़ो,यहाँ तक कि फ़ितना शेष न रह जाए और दीन धर्म अल्लाह के लिए हो जाए। अतः यदि वे बाज़ आ जाऐं तो अत्याचारियों के अतिरिक्त किसी के विरूद्ध कोई कदम उठाना उचित नहीं।" (2:193, पृ.30)

(*iii*) "प्रतिष्ठित महीना (सब के लिए) बराबर है। प्रतिष्ठितमहीने के, और समस्त प्रतिष्ठाओं का भी बराबरी का बदला है। अतः जो तुम पर ज़्यादती करे, तो जैसी ज़्यादती वह तुम पर करे, तुम भी उसी प्रकार उससे ज़्यादती का बदला लो और अल्लाह का डर रखो।" (2:194, पृ.30)

(*iv*) "उन इनकार करने वालों से कह दो कि वे यदि बाज़ आ जाऐं तो जो कुछ हो चुका उसे क्षमा कर दिया जायेगा किन्तु यदि वे फिर भी वही करेंगें तो पूर्ववर्ती लोगों के सिलसिलें में जो रीति अपनाई गई वह सामने से गुज़र चुकी है।" (8:38, पृ.152)

(*v*) "उनसे युद्ध करो यहाँ तक कि फ़ितना बाकी न रहे और 'दीन' (धर्म) पूरा का पूरा अल्लाह ही के लिए हो जाए। फिर यदि वे बाज़ आ जाऐं तो अल्लाह उनके कर्म देख रहा है।" (8:39, पृ.152)

(*vi*) "अतः यदि युद्ध में तुम उन पर काबू पाओ, तो उनके साथ इस तरह पेश आओ कि उनके पीछे वाले भी भाग खड़े हों ताकि वे शिक्षा ग्रहण करें" (8:57, पृ.154)

(*vii*) "इनकार करने वाले यह न समझें कि वे आगे निकल गए। वे काबू के बाहर नहीं जा सकते और जो भी तुमसे हो सके उनके लिए बल और बंधे घोड़े (युद्ध की तैयारी) तैयार रखो ताकि इसके द्वारा अल्लाह के शत्रुओं और अपने शत्रुओं और इनके अतिरिक्त उन दूसरे लोगों को भी भयभीत कर दो जिन्हें तुम नहीं जानते। अल्लाह उनको जानता है और अल्लाह के मार्ग में तुम जो कुछ भी खर्च करोगें वह तुम्हें पूरा-पूरा

चुका दिया जाएगा और तुम्हारे साथ कदापि अन्याय नहीं होगा।" (8:59-60, पृ.156)

पांचवी अवस्था-गैर मुसलमानों से युद्ध करना अनिवार्य

आगे चलकर अधिक शक्तिशाली होने पर, अल्लाह ने मुसलमानों के लिए इस्लाम के प्रसार के लिए गैर-मुसलमानों से युद्ध करना उनका एक लाज़िम फ़र्ज़ या अनिवार्य कर्त्तव्य घोषित कर दिया, चाहे वे इसे पसन्द करें या न करें।देखिए कुछ आयतें :

(*i*) "तुम पर युद्ध अनिवार्य किया गया और वह तुम्हें अप्रिय है और बहुत सम्भव है कि कोई चीज़ तुम्हें अप्रिय हो और वह तुम्हारे लिए अच्छी हो और बहुत सम्भव है कि कोई चीज़ तुम्हें प्रिय हो और वह तुम्हारे लिए बुरी हो, और अल्लाह जानता है और तुम नहीं जानते।" (2:216, पृ. 33)

(*ii*) "अल्लाह के मार्ग में युद्ध करो और जान लो कि अल्लाह सब कुछ सुनने वाला, जानने वाला है।" (2:244, पृ. 37)

(*iii*) "तो जो लोग आखिरत (परलोक) के बदले सांसारिक जीवन का सौदा करें उन्हें चाहिए कि अल्लाह के मार्ग में लड़ें, जो अल्लाह के मार्ग में लड़ेगा चाहे वह मारा जाए या विजयी रहे। उसे हम शीघ्र ही बड़ा बदला प्रदान करेंगें।" (4:74, पृ. 76)

(*iv*) "हे ईमान लानेवालो! जब एक सेना के रूप में तुम्हारा इनकार करने वालों से मुकाबला हो तो पीठ न फेरो। जिस किसी ने भी उस दिन उनसे अपनी पीठ फेरी-यह बात और है कि युद्ध-चाल के रूप में या दूसरी टुकड़ी से मिलने के लिए ऐसा करे-तो वह अल्लाह के प्रकोप का भागी हुआ और उस का ठिकाना जहन्नम है और क्या ही बुरी जगह है वह पहुंचने की" (8:15-16, पृ. 150)

छठी अवस्था सशस्त्र युद्ध का स्थायी आदेश

जब पैगम्बर मुहम्मद सैनिक दृष्टि से अत्यधिक शक्तिशाली हो गए और 630 में मक्का पर विजय प्राप्त कर ली तो उन्होंने सबसे पहले

मदीना के गैर-मुसलमानों की सुरक्षा के उत्तर दायित्व की जो शपथ ली थी उससे अपने को मुक्त कर लिया और घोषणा कर दी कि रमादान के चार पवित्र महीनों के बाद वे या तो इस्लाम स्वीकार लें या युद्ध करें जैसा कि नीचे की आयतों से स्पष्ट है :

(*i*) "मुशरिकों (बहुदेववादियों) से जिनसे तुमने संधि की थी विरक्ति (की उद्घोषणा) है अल्लाह और उसके रसूल की ओर से। अतः उस धरती में चार (पवित्र) महीने और चल-फिर लो और यह बात जान लो कि तुम अल्लाह के काबू से बाहर नहीं हो सकते और यह कि अल्लाह इनकार करने वालों को अपमानित करता है।" (9:1-2, पृ. 157)

(*ii*) "फिर जब हराम (प्रतिष्ठित) महीने बीत जाऐं तो मुशरिकों को जहाँ कहीं पाओ कत्ल करो।, उन्हें पकड़ो और उन्हें घेरो और हर घात की जगह उनकी ताक में बैठो। फिर यदि वे तौबा करलें और नमाज़ कायम करें और ज़कात दें तो उनका मार्ग छोड़ दो।" (9:5, पृ. 157)

(*iii*) "वे किताबवाले जो न अल्लाह पर ईमान रखते हैं और न अन्तिम दिन पर और न अल्लाह और उसके रसूल के हराम ठहराए हुए को हराम ठहराते हैं और न सत्यधर्म का अनुपालन करते हैं, उनसे लड़ो, यहाँ तक कि वे सत्ता से विलग होकर और छोटे (अधीनस्थ) बनकर ज़िज्या देने लगें।" (9:29, पृ. 160)

(*iv*) "ईमान लाने वाले तो अल्लाह के मार्ग में युद्ध करते हैं और अधर्मी लोग तागूत (बढ़े हुए सरकस) के मार्ग में युद्ध करते हैं। अतः तुम शैतान के मित्रों से लड़ो। निश्चय ही शैतान की चाल बहुत कमज़ोर होती है।" (4:76 पृ. 76-77)

कुरान की उपरोक्त आयतों से सुस्पष्ट है कि मक्का का शान्तिपूर्ण इस्लाम मदीना में धीरे-धीरे आक्रामक और आंतकवादी इस्लाम में परिवर्तित हो गया तथा 630 एडी में मुसलमानों की मक्का पर विजय के बाद अल्लाह ने विश्व के सारे गैर-मुस्लिमों-यहाँ तक की 'किताब वालों' यानी ईसाई, यहूदियों, तथा हिन्दू-बौद्ध, नास्तिक आदि सभी के विरूद्ध, यदि वे इस्लाम स्वीकार न करें तो एक स्थायी अन्तहीन और आक्रामक युद्ध का ऐलान कर दिया जोकि कुरान के अन्तिम सूरा की

आयत, (9.5) से सिद्ध होता है। इस्लाम में यह आयत 'तलवार की आयत' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें 'जहाँ कहीं' शब्द का अर्थ न, केवल अरेबिया में बल्कि विश्वभर में, कहीं भी से है। अतः यह आयत विश्वभर के गैर-इस्लामी, विभिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायों में विश्वास रखने वाले सभी गैर मुसलमानों, जो इस्लाम धर्म स्वीकार न करना चाहें, के विरूद्ध सशस्त्र खुला आदेश है। इसकी पुष्टि में पैगम्बर मुहम्मद एक हदीस में स्वयं कहते हैं :

"अल्लाह के पैगम्बर ने कहा" मुझे अल्लाह ने सभी लोगों के विरूद्ध तब तक युद्ध करते रहने का आदेश दिया हुआ है जब तक कि वे यह स्वीकार न कर लें कि अल्लाह के अतिरिक्त कोई अन्य पूज्य प्रभु (ईश्वर) नहीं है और मुझ में विश्वास रखें कि मैं ही अल्लाह का अन्तिम रसूल हूं और उसमें जिसके साथ मुझे भेजा गया है। और जब वे ऐसा विश्वास व्यक्त कर दें (यानी इस्लाम स्वीकार कर लें) तो उनकी जान और माल की सुरक्षा की मेरी गांरटी है, सिवाए इसके कि वह कानूनन उचित हो।" (*मुस्लिम खं. 1:31-32, पृ. 20-21*)

इसी आयत (9.5) के आधार पर पैगम्बर ने स्वयं मुसलमानों को आदेश दिया कि जब तुम गैर-मुसलमानों से मिलो तो उनके सामने तीन विकल्प रखो :

1) "उनको इस्लाम स्वीकारने को कहो; 2) यदि वे न मानें तो ज़ज़िया (टेक्स) देने को कहो और यह भी न मानें तो, 3) उनके साथ जिहाद (यानी सशस्त्र युद्ध) करो।" (*मुस्लिम, खं. 3: 4249, पृ. 1137; माजाह, खं. 4:2858 पृ. 189-190*)

आयतों का निरस्तीकरण—इस्लाम की मान्यता है कि सर्व शक्तिमान, सर्वज्ञ अल्लाह आवश्यकतानुसार मुहम्मद पर पहले अवतरित आयतों में से किसी को भी निरस्त कर देता है या उसकी जगह दूसरी नई भेज देता है जैसे :

(*i*) "हम जिस आयत को भी मिटा देते हैं या उसे भुला देते हैं तो उससे बेहतर लाते हैं या उस जैसा दूसरा ही। क्या तुम नहीं जानते है कि अल्लाह को हर चीज़ का सामर्थ्य प्राप्त है।" (2:106, पृ.19)

(*ii*) "अल्लाह जो कुछ चाहता है, मिटा देता है और (जो कुछ चाहता है) कायम रखता है। मूल किताब तो स्वयं उसी के पास है।" (13:39, पृ.213)

अल्लाह के उपरोक्त आदेशों के कारण इस्लाम के सभी विद्वान कुरान में आयतों के निरस्तीकरण के सिद्धान्त को मानते है। चौदहवीं सदी के विद्वान जलालुद्दीन सुयूती के अनुसार कुरान की पांच सौ आयतें निरस्त या अप्रभावी हैं (*पी. टी. ह्यूज, पृ. 520*)

इस्लाम के विद्वान यह भी मानते हैं कि कुरान का नौवां सूरा सबसे आखिरी है और इसकी 5वीं आयत जिसे 'तलवार की आयत' भी कहते है, मक्का और मदीना में अवतरित उन सभी उदार आयतों को निरस्त करती है जो कि गैर-मुसलमानों के सम्बन्ध में कही गई हैं, जो कि तर्क संगत भी है (*सैयद कुत्ब, माइल, स्टोन पृ. 63*)। मगर इस सम्बंध में विद्वानों में मतभेद है कि आयत 9.5 पिछली कितनी आयतों को निरस्त करती है और उनकी जगह कौन-कौन सी नई लाई गई हैं या नहीं लाई गई हैं। उदाहरण के लिए पैगम्बर मुहम्मद के जीवनी लेखक म्यूर बताते है कि आयत 9.5, पिछली 225 आयतों को, (*वही, पृ. XXVI*), अब्दुल्ला अज्जाम 140 आयतों को, सैयद अबुल मौदूदी 200 आयतों को (*मोरे, पृ. 218*) निरस्त करती है।

"इस संदर्भ में आर. बैले ने" 'दी जिहाद जुगरनॉट' (पृ. 56) में लिखा है: "हालांकि सभी मुसलमान विश्वास करते है कि अल्लाह ने कुछ नई आयतों को भेजकर पुरानी आयतों को निरस्त किया था। परन्तु इस विषय में उनमें व्यापक मत भेद है कि कौन-सी आयत ने किस आयत का स्थान लिया। फिर भी अधिकांश विद्वान मानते हैं कि जिहाद के विषय में आयत 9.5 पहले अवतरित हुईं, अधिकांश आयतों को निरस्त कर देती है। कुछ का मानना है कि यह आयत (9.5) पिछली 111 आयतों को निरस्त करती है। इस सामान्य सहमति के बाद भी अनेक लोग इस्लाम को शान्ति का मज़हब सिद्ध करने के उद्देश्य से पिछली निरस्त आयतों को प्रस्तुत करते रहते हैं। इस प्रकार आधुनिक उदारवादी मुस्लिम नेता, विशेषकर पाश्चात्य देशों में इस्लाम में अहिंसा और

सहिष्णुता सिद्ध करने के लिए उस इस्लाम को पढ़ाते है जिसे कि मक्का का इस्लाम कहा जा सकता है। साथ ही कट्टर पंथी और रूढ़िवादी मुसलमान "मदीना के उस इस्लाम" को जो कि कहीं अधिक आक्रामक और सर्वसत्तावादी है, को मुस्लिम जगत के अधिकांश भागों में पढ़ाते हैं।"

अतः सार की बात यह है कि जिहाद की 3 अवस्थाऐं हों या 6, परन्तु सबकी अन्तिम अवस्था ही वैध है और शेष पिछली सब अवस्थाऐं अमान्य हैं तथा 632 एडी के बाद इस्लाम की आयत (9.5) द्वारा यही संदेश है कि विश्वभर के गैर-मुसलमान या तो मुसलमान बन जाऐं या सशस्त्र युद्ध तक के लिए तैयार हो जाऐं।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर—"यह बात स्वीकार कर लेनी चाहि कि पाकिस्तान बनने से हिंदुस्थान सांप्रदायिक समस्या से मुक्त नहीं हो जाएगा। सीमाओं का पुनर्निर्धारण करके पाकिस्तान को तो एक सजातीय देश बनाया जा सकता है, परंतु हिंदुस्थान तो एक मिश्रित देश बना ही रहेगा। मुसलमान समूचे हिंदुस्थान में छितरे हुए हैं—यद्यपि वे मुख्यतः शहरों और कस्बों में केंद्रित हैं। चाहे किसी भी ढंग से सीमांकन की कोशिश की जाए, उसे सजातीय देश नहीं बनाया जा सकता। हिंदुस्थान को सजातीय देश बनाने का एकमात्र तरीका है, जनसंख्या की अदला-बदली की व्यवस्था करना। यह अवश्य विचार कर लेना चाहिए कि जब तक ऐसा नहीं किया जाएगा, हिंदुस्थान में बहुसंख्यक बनाम अल्पसंख्यक की समस्या और हिंदुस्थान की राजनीति में असंगति पहले की तरह बनी ही रहेगी।" (पाकिस्तान और भारत के विभाजन, *पृ. 130*)

अध्याय–4

मक्काई इस्लाम–इस्लाम का पहला चेहरा

जिहाद की यात्रा के पिछले लम्बे विवेचन से यह साफ़ जाहिर हो गया है कि मक्का में इस्लाम का शान्तिपूर्ण, सहयोगी व सहनशीलता का स्वरूप 13 वर्ष बाद मदीना में आकर तानाशाही और आक्रामक हो गया जिसके परिणामस्वरूप तभी से इस्लाम सारे विश्व में गैर-मुसलमानों के साथ खून की होली खेलता चला आ रहा है। ऐसा सभी विद्वान मानते हैं कि मक्का और मदीना की आयतों के स्वरों में भी काफ़ी अन्तर है तथा इस्लाम के इन परस्पर विरोधी दो चेहरों के कारणों पर अपनी -अपनी प्रतिक्रियाऐं की हैं।

(1) Hitti writes in his book "History of the Arabs" (pp.124-125) "The Makkan surahs, about ninety in number, and belonging to the period of struggle, are mostly short, incisive, fiery, impassioned in style and replete with prophetic feeling. In them the Oneness of Allah, His attributes, the ethical duties of man and the coming retribution constitute the favorite themes."

(1) 'अरबों के इतिहास' लेखक पी.के. हिट्टी का मत है कि "मक्काई सूरा जो लगभग 90 हैं और संघर्ष काल के हैं अधिकांशतः छोटे, उत्कीर्ण, प्रेरणादायक और निर्विकार शैली के हैं तथा भविष्य सूचक भावनाओं से परिपूर्ण हैं। इनमें अल्लाह का एकत्व, उसकी विशेषताऐं, मनुष्य के नैतिक कर्त्तव्य और भावी प्रतिदान मुख्य विषय हैं।" (पृ. *124-125*)

(2) In this context, Ali Dasti writes "The beauty and melody of the Meccan suras, so reminescent of the preachings of Isaih and Jeremiah and evocative of the fervour of a visionary soul, seldom reapear in the Medican suras, where the poetc and musical tone tends to be silenced and replaced by the peremptory note of rules and regulatious." (ibid p.81)

Dashti further observes that:

"Initially there had been no sanction for the use of force and harshnees," and "There had been no question of war while

the Prophet remained at Mecca."........"Amiable behaviour towards possessors of scriptures is recommended in several Meccan and early Madinan verses."(pp. 83-84)

(2) इस संदर्भ में ईरानी लेखक अली दाष्टी लिखता है : "मक्काई सूरों का सौंदर्य और स्वर माधुर्य जो बाइबिल के इसैय्याह और जेरेमियाह की याद दिलाते हैं और जो कि एक उद्‌बोधक की भाव प्रवरता को प्रगट करते हैं, वह मदीनाई सूराओं में शायद ही कभी सुनाई दे, जहाँ काव्य और संगीतमयी ध्वनि लगभग शान्त हो जाती है और उसकी जगह अनतिक्रमणीय विधि-विधानों एवं आदेशों की गूंज सुनाई देती है।" (पृ. 81)

दाष्टी फिर लिखता है—"प्रारम्भ (मक्का) में ज़ोर-जबरदस्ती, शक्ति और कठोरता की आज्ञा नहीं थी और जब तक मुहम्मद मक्का में रहे, यहाँ युद्ध करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। 'किताब वालों (ईसाई, यहूदी आदि) के प्रति सौजन्यपूर्ण व्यवहार का आदेश अनेक मक्काई और प्रारम्भिक मदीनाई आयतों में सुस्पष्ट है।" (*वही, पृ. 83-84*)

(3) According to Walker, "The early or Meccan suras show tolerance for faiths, even for the pagan Arabs. They are full of high idealism, prompted by religious conviction and deep spirituality, in consonance with the Jewish and Christian traditions. God is generally referred to as al-Rahman, "the Merciful".

"These (early Meccan) suras consist of religious teachings, moral principles, brief homilies and other inspired sayings of the Prophet. Their message is delivered in a short and simple rhapsodic style, full of visionary power and poetic fire, usually in rhymed and rhythmic prose. (saj).

"These glowing and impassioned verses, with their striking images and stately rhythms, their mystical beauty and religious insight, were known as the "terrific suras", because they were often preceded by spells of unconsciousness."

"The Meccan suras, embodying the faith of Abraham for the Arab people, comprise about one-third of the whole Koran, and would make up a slender volume. Many of these suras, in whole or in part were on the lips of Muhammad's followers.

Despite being transmitted orally, they generally remained unchanged and uncorrupted, to form the nucles of the faith and the foundation of early Islam. Much of the material had a hymnic or psalmic character, making it suitable for liturgical purposes, so it was also used in public worship and on other religious occasions,"(*p.150*)

(3) इस विषय में बैंजमेन वाकर अपनी पुस्तक 'फाउंडेशन आफ़ इस्लाम' में लिखता है: प्रारम्भिक अथवा मक्काई सूरा विभिन्न धार्मिक मतों यहाँ तक कि अरबी पैगनों के प्रति सहिष्णुता प्रगट करते हैं। वे यहूदी और ईसाई परम्पराओं के समान उच्च श्रेणी के आदर्शवाद एवं धार्मिक आस्थाओं से प्रेरित और गहन आध्यात्मिकता से ओत प्रोत हैं। ईश्वर को सामान्यतया 'अल-रहमान' यानी दयालु कहा गया है। इन (प्रारम्भिक मक्काई) सूराओं में धार्मिक शिक्षाऐं, नैतिक सिद्धान्त, संक्षिप्त धर्मोपदेश और पैगम्बर के अन्य प्रेरणादायक वचन हैं। इनमें उपदेश एक संक्षिप्त और साधारण भावनात्मक शैली में, दिव्य शक्ति से ओत प्रोत, काव्यमयी ओज एवं अक्सर तुकान्त और सामंजस्य पूर्ण ढ़ंग से दिए गए हैं"

"ये उद्दीप्त और भावनात्मक आयतें अत्यन्त प्रभावशाली और अत्यन्त बुलन्द ताल सहित अपने रहस्यमय सौंदर्य और धार्मिक सन्देश से ओत-प्रोत हैं। इन आयतों को चमत्कारी माना जाता है क्योंकि वे अक्सर अचेतन अवस्था में की हैं।

मक्काई सूराओं, जिनमें अरबी लोगों के लिए इब्राहीम (पूर्व पैगम्बर) के धर्म का भी समावेश है और जो पूरी कुरान के एक तिहाई भाग के बराबर हैं। मगर (छोटी आयतें होने के कारण) उनका आकार बहुत कम है। अनेक सूरा-पूरे के पूरे या आधे तो मुहम्मद के अनुयायियों की ज़ुबान पर थे। मौखिक रूप से प्रचारित करने के बावजूद भी वे सामान्यतया अपरिवर्तित एवं शुद्ध रहे जो प्रारम्भिक इस्लाम की नींव और उसके केन्द्र बिन्दु बने रहे। अधिकांश सामग्री भजनीय एवं गाने योग्य रही जो कि पूजा पद्धति के लिए उपयोगी सिद्ध हुई। इसलिए ये सूरा सार्वजनिक एवं अन्य अवसरों पर पूजा उपासना में भी प्रयोग होते थे।" (पृ. 150)

(4) Similarly Burke observes, "Early Quranic verses, delivered to Muhammad between 610 and 623 CE while his community was small, unpopular and barely tolerated by vastly superior forces, urge patience and the spreading of the word of Islam through non-violent means alone.

"There is no compulsion in religion, for the right way is clear from the wrong way", the Quran says (2.256) (Al-Qaeda, p.31)

(4) इसी प्रकार बुर्के अपनी पुस्तक 'अल-कायदा' (पृ. 31) में लिखता है : "कुरान की प्रारम्भिक आयतें जो कि पैगम्बर मुहम्मद पर 610 से 623 एडी के बीच नाज़िल हुई, जबकि उसके अनुयायियों की संख्या कम थी, वे लोक प्रिय भी नहीं थे और अधिक शक्तिशाली लोगों द्वारा मुश्किल से सहनीय थे, तब वे धैर्य रखने का उपदेश देते और इस्लाम के संदेश को शान्तिपूर्ण तरीकों से फैलाते थे जैसे "धर्म के विषय में किसी के साथ ज़ोर जबरदस्ती नहीं है क्योंकि सही रास्ता तो गलत रास्ते से सुस्पष्ट है।" (2:256)

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर—मैंने मुसलमानों से स्पष्ट पूछा है कि यदि कोई बाहरी मुहम्मदीय शक्ति भारत पर हमला करती है तो ऐसी स्थिति में क्या वह (मुसलमान) अपने सम्मिलित भारत देश की रक्षा के लिए अपने हिन्दू पड़ोसियों का कन्धे-से-कन्धे मिलाकर उनका साथ देंगे। मैं उनसे पाए गए उत्तर से संतुष्ट नहीं था...यहाँ तक कि मि. मौहम्मद अली (अली भाइयों में से एक, अनु.) जैसे व्यक्ति ने घोषणा की कि किसी भी परिस्थिति में, किसी भी मुसलमान को, चाहे वह किसी भी देश का हो, वह आज्ञा नहीं है कि वह किसी मुसलमान के विरुद्ध संघर्ष करें। (*18. 4.1924 को, टाइम्स ऑफ इंडिया में रवीन्द्रनाथ टैगोर के छपे साक्षत्कार से*)

अध्याय–5

मदीनाई इस्लाम : इस्लाम का दूसरा चेहरा

पिछले जिहाद की यात्रा के विवरण से सुस्पष्ट है कि मदीना में आकर पैगम्बर मुहम्मद ने शक्ति संचित की और मदीना में छोटा सा एक इस्लामी राज्य स्थापित किया। अतः यहाँ की आयतों में मक्काई आयतों से काफी विभिन्नता ही नहीं बल्कि कुछ मामलों में विरोध भी है।

(1) About Madinan suras P.K. Hitti writes : "The Madinan surahs, the remaining twenty-four (about one-third of the contents of the Koran)which "were sent down"(unzlat) in the period of victory, are mostly long, verbose and rich in legislative material. In them theological dogmas and ceremonial regulations relating to the institution of public prayer, fasting, pilgrimage and the sacred months are laid down. They moreover contain laws prohibiting wine, pork and gambling; fiscal and military ordinances relating to alms-giving (zakat) and holy war (jihad); civil and criminal laws regarding homicide, retaliation, theft, usury, marriage and divorce, adultery, inheritance and the freeing of slaves. Surahs 2, 4 and 5 contain most of the this legislative material." (*ibid p. 124-125*)

(1) मदीनाई सूराओं के स्वरूप के बारे में पी.के. हिट्टी लिखता है–''चौबीस मदीनाई सूरा जो कि कुल कुरान का लगभग एक तिहाई भाग है और जो विजय काल में अवतरित हुए अधिकांशत : लम्बे, शब्द बहुल और विधि-विधान सम्बंधी सामग्री से भर पूर हैं। इनमें धर्म-सिद्धान्त, कर्म-काण्डीय नियम, सार्वजनिक प्रार्थना, रोज़ा, हज्ज और पवित्र महीनों के बारे में वर्णन है इसके अतिरिक्त इनमें शराब न पीने, सुअर का मांस न खाने और जुआ न खेलने के बारे में विधि-विधान हैं। साथ ही राजस्व और सैनिक आदेशों, दान देने, पवित्र युद्ध (जिहाद) तथा सिविल और आपराधिक कानून, नर हत्या, बदला लेने, चोरी, ब्याजखोरी, विवाह, तलाक, व्यभिचार, पैत्रिक सम्पत्ति और गुलामों को मुक्त करने सम्बंधी आदेश भी हैं। सूरा 2, 4 और 5 में अधिकांशतः इसी प्रकार के विधि-विधान हैं।'' (*वही, पृ. 124 - 125*)

(2) About Medinan ayats Walker writes: "In Medina, as Muhammad's status rose and his power increased, a change to have taken place in his character and in the nature of the Koranic message. This change is reflected in a marked alteration in both the style and the content of his utterances. The long passages in the Koran that Western critics have pronounced tedious, pedestrian and toilsome to read are almost exclusively suras composed in Medina."

"In Medina there is a marked decline in the religious enthusiasm and poetic fervor that illumine the Meccan revelations. The visionary becomes a preacher, the prophet a theologian. Few of the suras bear, the marks of divine influence. Muhammad's energy begins to spend itself; his inspiration falters, with only an occasional flash of the old fire. Discursive prose takes the place of ecstatic utterance. Some passages underline his own importance, or deal with personal problems, and show a growing intolerance and hostility to those who oppose him."

"The Medinan suras are clearly the product of the Prophet's conscious mind. They consist of exhortations, appeals, regulations and proclamations. The texts begin to resemble doctrinal sermons and take on a more didactic and legalistic tone. The inspired "readings" become little more than a 'text'. In the Medinan period, the term 'Koran' is used less frequently, the term 'al-Kitab', the Book, being used instead."(ibid, p.151)

(2) वाकर के अनुसार–"मदीना में जैसे-जैसे मुहम्मद की प्रतिष्ठा और उसकी शक्ति बढ़ती गई , तो उसके चरित्र एवं कुरान की आयतों के स्वरूप में परिवर्तन होता दिखाई देता है। यह परिवर्तन उसके कथनों और शैली दोनों में दिखाई देता है। कुरान में लम्बे-लम्बे पद जिनकी कि पश्चिमी आलोचकों ने पढ़ने में बोझिल, नीरस और थकाऊ कहा है, वे अधिकांशतः मदीना के ही हैं।"

वाकर आगे लिखता है–"मदीनाई सूराओं में धार्मिक उन्माद और काव्यात्मक भाव प्रवणत में बहुत कमी दिखाई देती है जो कि मक्काई सूराओं में साफ़ दिखाई देती है। यहाँ एक युग दृष्टा, एक उपदेशक बन

जाता है तथा पैगम्बर एक धर्म-शास्त्री बन जाता है। केवल कुछ ही सूराओं में दैवी प्रभाव प्रदर्शित होता है। स्वयं मुहम्मद की शक्ति कम होने लगती है, उसकी प्रेरणा में अस्थिरता आने लगती है और कभी-कभी ही वाणी में तेजस्विता आती है। बुद्धि-परक गद्य हर्षातिरेकी उदगारों का स्थान ले लेती है। कुछ आयत स्वयं मुहम्मद के महत्व को दर्शाती हैं अथवा उस की व्यक्तिगत समस्याओं से सम्बंधित हैं तथा कुछ मुहम्मद का विरोध करने वालों के प्रति असहिष्णुता और शत्रुता प्रगट करती हैं।"

"मदीनाई सूरा साफ़ तौर पर मुहम्मद के सचेतन मास्तिष्क की देन हैं। उनमें प्रोत्साहन, अपील, घोषणाऐं और निमंत्रण हैं। मूल पाठ मिले-जुले सैद्धान्तिक उपदेशों से प्रारम्भ होते हैं और जो आगे चलकर नीतिपरक और विधि-विधान का रूप ज्यादा ले लेते हैं। अब अन्तः प्रेरित "पठन-सामग्री" एक उद्देश्य से कुछ अधिक मात्र तक रह जाती है। मदीनाई काल में "कुरान" शब्द अक्सर कम प्रयोग होता है तथा उसकी जगह "अल किताब' या 'किताब' का प्रयोग अधिक दिखाई देता है।" (वही, पृ. 151)

(3) About Medinan Ayats Dasti writes: "At Medina orders and rules were issued on the authority of a commander who could allow no infrigement or deviation. The penalties prescribed for violation or negligence were very severe."(pp. 81-82).

"At Medina, however, particularly after the expansion of Moslem power, the mere cursing of the deities of the Qoraysh was no longer at issue; peaceful and affable contact with unbelievers was categorically forbidden. In the words of the Madinan sura 47 (Mohammad), verse 35, "So do not be weak and call for peace when you are uppermost! God is with you and will not deprive you of (the proceeds of) your deeds."(pp.82-83)

"Muhammad's announcement of this edict (sura 9.29;98:5-6 about the People of the Book) after the elimination of the Madinan Jews, the seizure of the Jewish villages of Khaybar and Fadak, and the conquest of Mecca, indicates that with Islam in power, polite and rational discussion with dissentients was no longer deemed necessary. The language of future

discourse with them was to be the langugage of the sword."(p.85).

(3) इस सम्बंध में अली दाष्टी का मत है कि "मदीना में नियम और आदेश एक कमाण्डर की सत्ता के अन्तरगत दिए जाते थे जिनमें कोई फेर-बदल और परिवर्तन नहीं कर सकता था। किसी तरह की अवज्ञा या उपेक्षा करने की भारी सज़ा थी।" (वही, पृ. 81-82)

"यद्यपि मदीना में विशेषकर मुस्लिम शक्ति के प्रसार के बाद, केवल कुरेशों के देवताओं की निन्दा करना कोई विशेष विषय नहीं था परन्तु गैर-मुसलमानों से शान्तिप्रिय और सौजन्य पूर्ण व्यवहार की सख्ती से मनाही थी जैसाकि कुरान की आयत 47:35 में कहा गया है : "अतः ऐसा न हो कि तुम हिम्मत हार जाओ और सुलह का निमंत्रण देने लगो, जबकि तुम प्रभावी हो। अल्लाह तुम्हारे साथ है और वह तुम्हारे कर्मों (के फल) में तुम्हें कदापि हानि नहीं पहुंचाएगा।" (वही, पृ. 82-83)

अली दाष्टी आगे लिखता है "मुहम्मद की (किताब वालों के विषय में) इन-9:29; 98:5-6, फरमानों/घोषणा तथा मदीना के यहूदियों को निकाल देने, यहूदियों के खैबर और फदक के गाँवों पर कब्जा कर लेने और मक्का विजय एवं इस्लाम के राजनैतिक दृष्टि से शक्तिशाली हो जाने के बाद, विरोधियों के साथ किसी प्रकार के विवेक युक्त एवं विनम्र वार्तालाप की कोई और आवश्यकता नहीं रह गई। उनके साथ भावी बातचीत का तरीका सिर्फ़ तलवार की भाषा हो गया था।" (वही, पृ. 85)

(4) About Medinan ayats Burke writes."After the time of the hijra, Allah appears to have given permission for Muslim to engage in defensive warfare. Later verses, received by Muhammed when at the height of his power, enjoined an offensive against unbelievers "**fight and slay the pagans wherever ye find them, and seize them, beleaguer them and lie in wait for them**" (9 : 5) These verses, known as the "swords verses", were held by the Ulema of the powerful and expansionist Ummayad and Abbasid dynasties to abrogate the previous more pacifistic Quranic injunctions. This interpretation provided a religious justification for armed expansions by the newly confident dominant ruling group. Though modern

moderates prefer to quote the early verses, contemporary radicals, such as bin-Laden, following the ideologies of the Ummayads and the Abbasids, maintain that they are abrogated by the later more aggressive verses." (*Al-Qaeda, pp.31-32*)

(4) मदीना की आयतों के स्वरूप के बारे में बुर्के लिखता है— "मक्का से मदीना को हिज़रा के बाद अल्लाह ने मुसलमानों की प्रतिरक्षात्मक युद्ध करने की अनुमति दे दी गई प्रतीत होती है। बाद की आयतों में,जो मुहम्मद पर नाज़िल हुई जब वह अत्यत शक्तिशाली हो गया तो उसे गैर-ईमानवालों के विरूद्ध युद्ध करने की आज्ञा दे दी गई जैसे कि **"लड़ो और कत्ल करो पैगनों को जहाँ कहीं तुम पाओ, उन्हें पकड़ों, उनकी घात में रहो"** (9:5)। इस आयत को जिसे कि 'तलवार की आयत' कहा जाता है, शक्तिशाली और प्रसारवादी उम्मीयद और अब्बासिद वंश के उलेमाओं ने पिछली उदार और शान्तिवादी आयतों को निरस्त करने के लिए प्रयोग किया। आयतों की इस व्याख्या ने नवीन, आश्वस्त व प्रभावी शासक वर्ग को तलवार द्वारा धर्म प्रसार को न्याय संगत बना दिया। हालांकि आधुनिक उदारवादी इन प्रारम्भिक आयतों का प्रमाण देना ज्यादा पसन्द करते हैं, जबकि वर्तमान कट्टर पंथी जैसे कि बिन-लादेन, उम्मीयदों और अब्बासिदों के आदर्शों का अनुसरण करते हुए मानते हैं कि इन आयतों (2:256 आदि) को बाद की अधिक आक्रामक आयतों ने निरस्त कर दिया है।" (वही, पृ. 31-32)

'इस्लाम-शान्ति का धर्म' के पक्ष में कुछ आयतों की असलियत

अक्सर मुल्ला-मौलवी इस्लाम को शान्ति और धार्मिक सहिष्णुता का मज़हब कहते हैं। इसके समर्थन में विशेषकर एक मक्काई (109.6) और दो मदीनाई आयतों (2:256) और (5:32) को अक्सर प्रस्तुत करते हैं जो कि एक भ्रामक प्रचार मात्र है। यदि हम आयतों को इनके सही संदर्भ में देखें तो पता चलेगा कि ये मुसलमानों को कट्टरता से अपना धर्म पालन करने का आदेश देतीं हैं। इस पहली आयत (109.6) का पहला भाग इस तरह है "कह दो: ऐ इनकार करने वालो। मैं वैसी बन्दगी नहीं करूंगा जैसी बन्दगी तुम करते हो और न तुम वैसी बन्दगी करने

वाले हो जैसी बन्दगी मैं करता हूँ, **तुम्हारे लिए तुम्हारा धर्म है और मेरे लिए मेरा धर्म''**। इससे साफ़ जाहिर है कि यह आयत धार्मिक सहिष्णुता नहीं बल्कि मुसलमानों को कट्टरता के साथ अपना धर्म पालन करने का उपदेश देती है कि वे गैर-ईमानवालों के समान बन्दगी न करें। वे गैर-मुसलमानों के धर्म से प्रभावित न हों। ऐसा ही इस्लाम के विद्वान मौलाना मौदूदी, सैयद कुत्व आदि मानते हैं।

दूसरी आयत (2:256) का अर्थ है : **''धर्म के विषय में कोई ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं। सही बात ना समझी की बात से अलग होकर स्पष्ट हो गई है।''** इस आयत का संदर्भ बताते हुए कुरान का भाष्यकार इब्न काथिर लिखता है कि ''जब मदीना की अंसार औरतों के बच्चे जन्म लेने के बाद जीते नहीं थे तो वे शपथ खातीं थीं कि यदि उसका बच्चा जन्म लेने के बाद जीता रहा तो वे उसे एक यहूदी की तरह पालेंगी और वे अपने बच्चे को पालने के लिए यहूदी स्त्री को दे देतीं थीं''। जब मुहम्मद ने बानू नादिर कबीले के यहूदियों को मदीना छोड़ने को कहा तो तब वास्तव में कुछ अंसारों के बच्चे यहूदी स्त्रियों के पास पल रहे थे। तो अंसारों ने कहा कि हम अपने बच्चे यहूदी स्त्रियों को नहीं ले जाने देगें। इसी की पुष्टि में सुनान अबू दाउद की एक हदीस (2:2676, पृ.743) के अनुसार पैगम्बर मुहम्मद ने उन बच्चों को अपने मूल माता पिता के पास लौटाने और उन्हें इस्लाम में दीक्षित करने को कहा। अतः इस आयत का सही अर्थ यह है कि किसी मुस्लिम का पालन पोषण करने के कारण उसे अनिवार्य रूप में यहूदी या अन्य धर्म में धर्मान्तरित नहीं किया जा सकता जैसाकि अगली आयत (2:257, पृ. 40) से स्पष्ट है ''जो लोग ईमान लाते हैं अल्लाह उनका रक्षक और सहायक है।'' यानी अल्लाह उनके धर्म का रक्षक है। तीसरी आयत (5:32, पृ.95) : **''इसी कारण हमने इस्राइल की सन्तान (यहूदियों) के लिए लिख दिया था कि जिसने किसी व्यक्ति को किसी के खून का बदला लेने या धरती में फ़साद फैलाने के अतिरिक्त किसी और कारण से मार डाला तो मानो उसने सारे ही इंसानों की हत्या कर डाली।''** ऊपर से यह आयत बड़ी मानवतावादी लगती है। परन्तु कुरान भविष्यकार इब्न काथिर साफ़ लिखता है कि यहाँ हत्या करने का अर्थ

किसी मुसलमान की यहूदी द्वारा हत्या करना है, न कि सामान्य मनुष्य की हत्या। यह बात अगली आयत (5:33, पृ.95) से साफ़ जाहिर है "जो लोग अल्लाह और उसके रसूल से लड़ते हैं और धरती में बिगाड़ पैदा करने के लिए दौड़ धूप करते हैं उनका बदला बस यही है कि वे बुरी तरह कत्ल किए जाऐं या सूली पर चढ़ाए जाऐं या उनके हाथ पांव विपरीत दिशाओं में काट डाले जाऐं या उन्हें देश से निष्कासित किया जाऐ।"

यदि इस्लाम में धार्मिक सहिष्णुता होती तो गैर-मुसलमानों का बलात् धर्मान्तरण एवं उनके कत्ले आम करने के आदेशों की 9.5 जैसी, अनेकों आयतें क्यों होती ?

इसके अलावा इस्लाम के विद्वान मानते हैं कि आयत 2.256 का आयत 2:190; 193,194; 5.2; 8:39, 9.5, 9.36 और 9.123 द्वारा तथा 5.32 का 5.33 द्वारा और 109.6 का 3.19, 3.85 आदि द्वारा निरस्तीकरण हो चुका है। इनके परिणामस्वरूप, सारी कुरान में, गैर-मुसलमानों के प्रति धार्मिक सहिष्णुता, सहनशीलता और उदारता का एक शब्द भी नहीं है।

विनायक दामोदर सावरकर—"मुस्लिम लीग 'वन्देमातरम्' को इस्लाम विरोधी घोषित कर चुकी है। राष्ट्रवादी कहे जाने वाले कांग्रेसी मुस्लिम नेता भी 'वन्देमातरम्' गाने से इनकार कर अपनी संकीर्ण मनोवृत्ति का परिचय दे चुके हैं। हमारे एकत. त्रादी कांग्रेसी नेता उनकी हर अनुचित व दुराग्रहपूर्ण माँग के सामने झुकते जा रहे हैं। आज वे वन्देमातरम् का विरोध कर रहे हैं। कल 'हिन्दुस्थान' या 'भारत' नामों पर एतराज़ करेंगे—इन्हें इस्लाम विरोधी करार देंगे। हिन्दी की जगह उर्दू को राष्ट्रभाषा व देवनागरी की जगह अरबी लिपि का आग्रह करेंगे। उनका एकमात्र उद्देश्य ही भारत को 'दारुल इस्लाम' बनाना है। तुष्टीकरण की नीति उनकी भूख और बढ़ाती जायेगी जिसका घातक परिणाम सभी को भोगना होगा।" (*अहमदाबाद में हिन्दू महासभा का अध्यक्षीय भाषण*)

अध्याय–6

इस्लाम के दो चेहरेः क्या और क्यों ?

इस्लाम के दो चेहरों के कारणों की समझने के लिए हमें मक्का और मदीना में अवतरित आयतों और यहाँ पैगम्बर मुहम्मद के कार्य कलापों एवं उनकी प्रतिक्रियाओं को समझना उपयोगी होगा। इस सम्बंध में *'कुरान में 'युद्ध की अवधारणाऐं'* नामक पुस्तक (पृ. 311) के लेखक एस.के. मलिक का कहना है कि : (1) "इस बीच, मक्का का छोटा मुस्लिम समुदाय इस्लाम की घोषणा के साथ ही कुरेशों के अत्याचार और उत्पीड़न का शिकार बना। वे निरन्तर अमानवीय यंत्रणा, दबाब और दण्ड के शिकार बन रहे थे। उनका मज़ाक बनाया जाता था, मौहें टेढ़ी की जाती थीं; और उनसे मार पीट किया जाता था : जो दुश्मन के अधि ाकार में थे उनको बेडियाँ लगाई जातीं थीं और बन्दी बनाया जाता था : अन्य दूसरे लोगों को लम्बे समय तक आर्थिक और सामाजिक प्रतिबन्ध ाों के अधीन रखा जाता था। शत्रु का दबाव तब हद कर गया जब कुरेश लोगों ने मुसलमानों को अपनी धार्मिक क्रियाओं को पूरा करने के लिए पवित्र मस्जिद में जाने से रोक दिया। अन्ततः उसने मुसलमानों को बारह वर्षों बाद 622 ई. में मदीना जाकर बसने को विवश कर दिया।"

(1) S.K. Malik argues "Meanwhile, the tiny Muslim community in Mecca was the object of the Koraish tyranny and oppression since the proclamation of Islam. They were continuously subjected to the most inhuman torture, repression and persecution. They were ridiculed, brow-beaten and assaulted; those within the power of the enemy, were chained and thrown into the prisons : others were subjected to prolonged economic and social retribulations. The enemy repression reached its zenith when the Koraish denied the Muslims access to the Sacred Mosque to fulfil their religious obligations. This sacrilegious act ammounted to an open declaration of war upon Islam. It eventully compelled the Muslims to migrate to Medina, twelve year later, in 622 A.D." (*The Quranic Concept of War, p.11*)

ब्रिगेडियर मलिक के ये दोनों आरोप, मुसलमानों को काबा मस्जिद में जाने से रोकना और उन्हें सताना, पूरी तरह निराधार हैं। पहला जब मुसलमान मूर्तिपूजा को मानते ही नहीं तो विभिन्न कबीलों की मूर्त्तियों से भरे काबा मस्जिद में वे क्यों जाना चाहते थे ? दूसरे कुरेशों ने मुसलमानों को नहीं सताया बल्कि पैगम्बर मुहम्मद ने ही पहले कुरेशों के आस्था केन्द्र काबा में स्थापित मूर्त्तियों की आलोचना करके उनकी धार्मिक आस्थाओं को ठेस पहुंचाई। बाद में जो कुछ हुआ वह मुहम्मद की कथनी व करनी की प्रतिक्रिया मात्र थी।

(2) इस सम्बंध में बुर्के (वही, पृ. 30) लिखता है–''मक्का के धनी शासकों ने मुहम्मद को मक्का से मदीना के लिए पलायन के लिए विवश किया क्योंकि उन्होंने न तो काबा में अपने देवी देवताओं की मूर्त्तियों को त्यागने और न मुहम्मद का मूर्त्तियों की पूजा की निन्दा करने को पसन्द किया जिस पर कि मक्का का लाभदायक हज्ज उद्योग निर्भर करता था''

(2) Burke writes :"Mohammad was forced to flee Mecca by the wealthy rulers, who liked neither his rejection of their authority in favour of God's nor his attacks on the worship of the idols in the main shrine in the Ka'ba' on which lucrative pilgrim industry was based." (*Al-Qaeda, p.30*)

(3) Sell writes : "In religious matters, the Meccans were not narrow-minded, nor was their religion exclusive. They tolerated various creeds then accepted in Arabia and opened the Ka'ba to men of all sects. Waraqa, the cousin of Muhammad, one of the Hanifs, embraced Christianity, but no one blamed him or interfered with him on that account. So at first they treated Muhammad with good-humoured contempt. The opposition against him was aroused when he set up his own teaching as the exclusive way of life and explicitly and implicitly condemned all other religions. So long as he kept to general statements, such as exhortations to lead good lives, or allusions to the Last Day, the people of Mecca cared little; but when he began to attack the idolatry of the Ka'ba, the case was quite altered and active opposition commenced. The chief cause of this was the

intense dislike they had to the changing of what had been long established. They had great reverence for the religion which made Mecca a sacred centre for the Arab people." (*p.4*) (ibid, p.4)

Besides this there was another reason for the opposition of Muhammad that he wanted the Koraish to accept him a prophet like earlier Prophets as Abrahm, Moses, Solomon, Jacob, Jesus etc. as he had a theo-political system in view from the very beginning. Sell further writes "It would not be difficult to show that he was, from the first, influenced by patriotic motives and that he had a politico-religious system in view." (*p.5*)

(3) इस संदर्भ में सैल लिखता है : "धार्मिक मामलों में मक्का निवासी संकुचित मनोवृत्ति के नहीं थे और न उनका धर्म पूरी तरह से एकान्तिक ही था। वे तत्कालीन मक्का में प्रचलित विभिन्न सम्प्रदायों को सहन करते थे। और इसीलिए उन्होंने 'काबा' के दरवाज़े सभी सम्प्रदायों के लोगों के लिए खोले हुए थे। मुहम्मद का चचेरा भाई बराक जो कि एक हनीफ़ था, जब ईसाई हो गया, तो न किसी ने उसको दोषी ठहराया और न किसी ने उसके इस मामले में हस्तक्षेप ही किया। अतः प्रारम्भ में, मक्कावासियों ने मुहम्मद को सहजभाव से देखा। लेकिन उसके विरूद्ध विरोध तब पैदा हुआ जब उसने अपने नये स्थापित मत को एक मात्र जीवन पद्धति के रूप में घोषित किया और अन्य सभी मतों की निन्दा की। जब तक वह सामान्य श्रेष्ठ जीवन बिताने की प्रेरणा देन वाले 'आखिरी दिन' सम्बंधी सामान्य उपदेश देता रहा तब तक मक्का के लोगों ने उसकी ओर कम ध्यान दिया। लेकिन जब उसने काबा मस्जिद में मूर्तियों और मूर्त्ति पूजा की आलोचना करना प्रारम्भ किया तो मामला बिल्कुल उलट गया और उसका प्रबल विरोध होना प्रारम्भ हो गया। इस विरोध का सबसे बड़ा कारण अति प्राचीन काल से चली आई उस प्रथा (सभी देवी देवताओं की पूजा) को बदलने पर था। उन्हें अपने (सर्व सहनीय) धर्म पर असीम श्रद्धा थी जिसके कारण से मक्का अरबी लोगों की श्रद्धा का केन्द्र बना हुआ था।" (*वही, पृ. 4*)

"इसके अलावा मुहम्मद के विरोध का दूसरा कारण यह था कि वह चाहता था कि कुरेश लोग, पिछले पैगम्बरों : जैसे इब्राहिम, मोज़ेज़,

सोलेमन, जैक्ब, ज़ीज़स, आदि के समान, उसे भी अपना पैगम्बर मानें क्योंकि प्रारम्भ से ही उसके दिमाग में, (अरब में) एक धर्म आधारित राजनैतिक सत्ता स्थापित करने की आकांक्षा थी। सैल आगे लिखता है "यह सिद्ध करना मुश्किल नहीं होगा कि वह (मुहम्मद) प्रारम्भ से ही राष्ट्र भक्ति की भावना से प्रेरित था और उसकी आकांक्षा अरबों में एक धर्म प्रेरित राज्य व्यवस्था स्थापित करने की थी" (*पृ. 5*)

इसकी मक्का के इतिहास से पुष्टि होती है। हालांकि अबूतालिब ने मुहम्मद के मत-इस्लाम को नहीं अपनाया और वह एक पैगन के रूप में ही मर गया। लेकिन उसने जीवनभर मुहम्मद का हर स्थिति में साथ दिया और कुरेशों को मनाने और आपसी शान्ति स्थापित करने के सभी सम्भव प्रयास किए।

इस संदर्भ में सैल लिखता है : "अबूतालिब ने मुहम्मद को कुरेशों को कुछ रियायतें देने को कहा और आश्वासन दिया कि कुरेश भी वैसा ही करेंगे। उस पर मुहम्मद ने जबाव दिया : "ठीक है, तब यह बताइए कि अरब देश किसके द्वारा शासित किए जाऐंगे और परसियिन कैसे अधीन लाए जाऐंगें" (कोइट्टिल, पृ. 74) और यह भी कहा : "कहोः अल्लाह के अलावा कोई अन्य देवता नहीं हैं, उसके अलावा जिसकी तुम पूजा करते हो, उसे त्याग दो।" दूसरे शब्दों में, मेरी शिक्षाओं को स्वीकारो और अरेबिया एक सम्मिलित राष्ट्र होगा और उसके शत्रु परास्त कर दिए जाऐगें। मक्कावासियों ने इसे एक खतरा समझा और उत्तर दिया : "हमें पूरा विश्वास नहीं है कि प्रभु सत्ता हमसे नहीं छिन जाएगी"। "इस्लाम की स्थापना में राजनैतिक पक्ष की अत्यधिक अनदेखी की गई है।" (वही, पृ. 5)

"मक्का के लोगों ने मुहम्मद की शिक्षाओं को स्वीकारने में युद्ध की सम्भावना देखी और सम्भवतः उसमें पराजय भी; और निस्संदेह इस भावना ने उनके बढ़ते हुए विरोध को और अधिक बल दिया। उन्होंने अब उसे झूठा, जादूगर, कवि, भविष्यवक्ता, प्रेतग्रस्त व्यक्ति आदि कहा। काबा के दरवाज़ों के पास उस पर प्रहार किया। एक बार तो वह आपे से बाहर हो गया और कहा "सुनो ! ओ कुरेशो, मैं तुम्हारा कत्ले

आम कर दूंगा" (*वही, पृ. 6*) यह छोटी सी घटना भी दर्शाती है कि प्रारम्भ से ही मुहम्मद के मन में राजनैतिक सत्ता की आकांक्षा भरी हुई थी।" (*कोइट्टिल, पृ. 87*)

(4) इस सम्बंध में पैगम्बर मुहम्मद का जीवनी लेखक म्यूर मक्का की तत्कालीन स्थिति के बारे में लिखता है—"पैगम्बर के उपरोक्त उत्तर से क्रोधित होकर (कुरेश) अबूतालिब के पास गए और उनसे कहा तुम्हारे इस भतीजे ने हमारे देवी-देवताओं और हमारे धर्म के बारे में अपमानजनक ढंग से निंदा की है और हमें भी मूर्ख कहकर भर्त्सना की है और हमारे पूर्वजों को भटक जाने वाला बतलाया है, अब आप हमें इस प्रतिकूल स्थिति से मुक्ति दिलाओ (और यदि आप भी अपने को हमारा जैसा ही पाओ) तो उसे हमारे ऊपर छोड़ दो। हम उससे सन्तोषजनक ढ़ंग से भुगत लेंगे।" मक्कावासी अबूतालिब से यह कर चले गए कि "निश्चय ही अब हम उसके हमको, हमारे पूर्वजों और हमारे देवी देवताओं के लिए कहे गए अपमानजनक शब्दों के लिए और अधिक धैर्य नहीं रख सकते हैं। अतः या तो आप उसे हमसे दूर रखें या यदि आप भी उसके साथ होलें ताकि हमारे बीच यह मामला निपट जाए।"

इस पर अबूतालिब ने मुहम्मद को बुलवाया और जो कुछ कुरेशों ने कहा, उससे कह दिया और साथ ही यह भी कहा "अतः मुझे और अपने को भी बचाओ और मुझ पर इतना बोझ न डालो जितने से अधिक मैं उठा न सकूं।" इस पर मुहम्मद ने अपने चाचा को यह जबाव दिया : "यदि वे मुझे अपने उद्देश्य से डिगाने के लिए दाई ओर से सूरज को और बाई ओर से चन्द्रमा को भी लाऐं तो भी निश्चय ही मैं उससे विचलित नहीं हूँगा जब तक कि अल्लाह मेरे उद्देश्य की पूर्ति न कर दे अथवा मैं इसके प्रयास में मर न जाऊं।" (*दी लाइफ़ आफ़ मुहम्मद, पृ. 87*)

(4) Regarding this, Muir, the biographer of Prophet Muhammad describes the situation as below :

"Infuriated by this they (body of Elders) approached Abu Talib, and said "This nephew of thine hath-spoken opprobriously of our gods and our religion, and hath upbraided us as fools, and given out that our forefathers were all astray.

Now, avenge us of our adversary; or (seeing that thou art in the same case with ourselves) leave him to us that we may take our satisfaction." Meccans went and said to Abu Talib, "And now verily we can not have patience any longer with his abuse of us, our acestors, and our gods : wherefore either do thou hold him back from us, or thyself take part with him that the matter may be decided between us." On this Abu Talib sent for Muhammad and communicated to him what Quraish said and remarked. "Therefore, save thyself and me also; and cast not upon me a burden heavier than I can bear." To this Muhammad replied to his uncle, "If they brought the sun on my right hand and the moon on my left, to force me from my undertaking, verily I would not desist therefrom until the Lord made manifest my cause, or I should perish in the attempt." (*The Life of Mahomet, p.87*)

इससे साफ़ है कि प्रारम्भ से ही मुहम्मद के राजनैतिक शक्ति पाने के विचार कितने सुदृढ़ थे। लेकिन उसने यहाँ अपने अनुयायियों को गैर-मुसलमानों (कुरेशों) के साथ सशस्त्र खूनी जिहाद करने की आज्ञा नहीं दी क्योंकि वह अभी किसी आक्रामक युद्ध के लिए काफी शक्तिशाली नहीं था। इसके अलावा 619 एडी मे पत्नी खदीजा और चाचा अबूतालिब, जो कि उसकी बहुत बड़ी शक्ति थे, के निधन के बाद, वह और भी असहाय एवं कमज़ोर हो गया था।

उसने आस-पास के गैर-कुरेश शासकों से सैनिक सहायता पाने का प्रयास किया। 615 एडी में उसने अबीसीनिया के ईसाई शासक नेगस के पास अपनी बेटी रूकैय्या और उसके पति उस्मान के साथ अपने 15 अनुयायियों को भेजा था। मगर यह प्रयास असफल रहा। इसी तरह 619 एडी में अपने चाचा अबूतालिब के निधन के 15 दिन बाद वह स्वयं जैद के साथ मक्का के कुरेशों के विरूद्ध सहायता पाने के लिए याक़िफ़ कबीले के पास टैफ़ गया और दस दिन तक वहाँ ठहरा। मगर टैफ के लोग व्यापारिक कारणों से कुरेशों के विरूद्ध सहायता देने को तैयार नहीं हुए। उनमें से एक ने तो यहाँ तक कह दिया– "क्या अल्लाह को अपना 'रसूल' बनाने के लिए तुमसे बेहतर कोई दूसरा व्यक्ति नहीं मिला।" इसी तरह एक दूसरे ने कहा "मैं आपसे बिल्कुल बात नहीं करूंगा।" (सिद्दीकी, पृ. 85; रोडिन्सन, पृ. 137; मोरे, पृ. 63)

मदीना आने का निमंत्रण– 620 में, मदीने के 6 पैगनों, जिन्होंने इस्लाम स्वीकार कर लिया था, मुहम्मद को मदीना आने का निमंत्रण दिया और कहा "हम उनको (मदीनावालों को) यह धर्म बतलाऐंगें। यदि अल्लाह की कृपा से वे मान गए और उन्होंने यह धर्म स्वीकार कर लिया तो तुम अन्यों से अधिक शक्तिशाली हो जाओगे (अरनोड, पृ. 20, रोडिन्सन; पृ. 143, वहीदुद्दीन 131,141, मोरे, पृ. 66)

इसके बाद अप्रैल 621 में, 12 मदीनावासी (दस खज़राज व दो और) मुहम्मद को मिले और उसके प्रति अपनी निष्ठा प्रगट की। इस्लाम में यह "अकेवाह की पहली शपथ" कहलाती है (सैय्यद अमीर अली, पृ. 43, मोरे, पृ. 43)। जब उन्होंने शपथ ले ली, तब पैगम्बर ने उन्हें सम्बोधित करते हुए कहा "यदि तुम अपनी शपथ पूरी करोगे, तो उसके बदले पुरस्कार रूप में तुम्हें जन्नत मिलेगी। और जो कोई किसी प्रकार असफल होगा तो उसके विषय में अल्लाह का अधिकार होगा कि वह उसे दण्ड दे या क्षमा करे"। (म्यूर, पृ. 118)

पैगम्बर मुहम्मद ने मक्का से हिज़रत यानी पलायन करके 22 सितम्बर 622 एडी को मदीना पहुंच कर मुसलमानों का सैनिकीकरण और युद्ध सामग्री इकठ्ठी करने का निश्चय किया। इसके लिए उन्होंने अरेबिया के विभिन्न भागों में बसे मुसलमानों को मदीना में आकर बसने और अल्लाह के लिए जिहाद करने तथा इस्लाम के प्रचार-प्रसार के लिए ज़कात देना आवश्यक कर दिया। साथ ही जिहाद करने वालों को लूट के माल का 80 प्रतिशत भाग देने और 20 प्रतिशत स्वयं के लिए रखा। साथ ही प्रत्येक जिहादी को मरने के बाद जन्नत मिलने का आश्वासन दिया। आर्थिक दृष्टि से अपने को मजबूत करने के लिए कोई काम ध न्धा न करके उन्होंने व्यापारिक कारवाओं, विशेषकर, मक्का के कारवाओं को लूटना प्रारम्भ कर दिया और पैगम्बर मुहम्मद ने पहले ही साल में लूटमार के सात हमले किए (*मोरे, पृ. 95*)

मदीना आने पर सबसे पहला अभियान अपने चाचा, अबूहमज़ा के नेतृत्व में, तीस लोगों सहित, सात माह बाद 623 एडी में किया, दूसरा अभियान उमैद के नेतृत्व में साठ लोगों सहित एक माह बाद किया और

तीसरा बीस लोगों सहित साद के नेतृत्व में किया और बाकी तीन हमले स्वयं पैगम्बर के नेतृत्व में हुए। ये सभी छहो अभियान असफल रहे तथा केवल सातवां नखला का हमला सफल रहा जो कि इस्लाम के इतिहास में स्मरणीय है। क्योंकि यह रमादान के पवित्र माह के आखिरी दिन हुआ जिसमें कि अरबी परम्पराओं के अनुसार लूटमार करना सदैव वर्जित था। फिर भी पैगम्बर ने लूट मार के लिए एक दल भेजा जिसमें कारवां के सुरक्षा गार्ड दल का एक व्यक्ति मारा गया, एक भाग गया और दो को कैद कर लिया गया

इतिहास बताता है कि प्रारम्भ में तो मुहम्मद ने इसे उचित नहीं माना। परन्तु तभी उन पर निम्नलिखित आयत अवतरित हुई :-"वे तुमसे आदरणीय महीने में युद्ध के विषय में पूछते हैं कहो : उसमें लड़ना गम्भीर बात है परन्तु अल्लाह के मार्ग से रोकना, उसके साथ अविश्वास करना, मस्जिदे हराम (काबा) से रोकना और उसके लोगों को उससे निकालना, अल्लाह की दृष्टि में इससे भी अधिक गम्भीर है और फ़ितना (उत्पीड़न) रक्तपात से भी बुरा है।" (2:217 पृ. 33)

अल्लाह का यह संदेश मिलने पर मुहम्मद ने रमादान के पवित्र व वर्जित महीनों में भी लूटमार को उचित ठहराया और लूट के माल का पांचवां हिस्सा स्वयं ले लिया और शेष को अभियान करने वालों में बांट दिया तथा दोनों कैदियों को छुटकारा राशि लेकर छोड़ दिया। साथ ही अभियान के नेता अब्दुल्ला को "विश्वास पात्र का कमांडर" की उपाधि से सम्मानित किया गया। इतिहासकार इब्न हिशाम लिखता है "यह पहला 'माले गनीमत' था जिसे कि मुसलमानों ने प्राप्त किया, ये पहले कैदी थे जिन्हें उन्होंने पकड़ा और यह पहली हत्या थी जो उन्होंने की" (मोरे, पृ. 96)

इस प्रकार मक्का में 'सावधान करने वाला' पैगम्बर मदीना में आकर 'योद्धा' बन गया। नखला की इस घटना ने जिहाद और भावी इस्लाम की और उसकी सोच को ही बदल डाला।

In this connection, John Laffin comments in his book, *'Holy War Islam Fights'* :

"The chapters of the Koran revealed to Muhammad in Mecca (610-622) taught patience under attack. Muslims, being then in the minority, had no option but to be patient. In the chapters he produced at Medina (after 622) the right to repel attack became dominant. Gradually this grew into a prescribed duty of the Muslims of Medina to take the initiative and fight to subdue the hostile people of Mecca. Thus holy war had its origin in the vital need of Muhammad to establish his authority. We cannot be certain that Muhammad realized that the position he was taking up implied constant and unprovoked war against the unbelieving world until it submitted to Islam. He certainly had a universal Islam in his mind, as the stories of his letters and messages to the surrounding tribes indicate." (p.44)

इस संदर्भ जोहन लाफिन अपनी पुस्तक (होली वार इस्लाम फाइट्स, पृ. 44) में लिखता है :-"कुरान के वे सूरा जो मुहम्मद पर मक्का (610-622 एडी) में नाज़िल हुए आक्रमण के समय धैर्य की शिक्षा देते हैं उस समय, संख्या बल में कम होने के कारण, मुस्लिमों के सामने धैर्य और शान्ति रखने के अलावा कोई और चारा नहीं था। लेकिन मदीना में आकर (622 एडी) जो सूरा उन्होंने नाज़िल किए, उनमें आक्रमण को निरस्त करना मुख्य विषय हो गया। धीरे-धीरे मदीना के मुसलमानों के लिए यह एक धार्मिक फ़र्ज हो गया कि वे पहल करें और मक्का के आक्रामक लोगों को परास्त करने के लिए युद्ध करें । इस प्रकार मुहम्मद को अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए पवित्र युद्ध की अनिवार्यता एक आवश्यकता हो गई। हम निश्चय तौर पर नहीं कह सकते कि मुहम्मद ने यह अनुभव किया हो कि जो नीति वह अपना रहा है, उसके परिणामस्वरूप मुसलमानों को बिना उकसाए भी गैर मुसलमानों के विरूद्ध बराबर युद्ध चलता रहेगा जब तक कि सारा गैर-मुस्लिम जगत इस्लाम स्वीकार न कर ले। निश्चय ही उसके मन में एक विश्व व्यापी इस्लाम की आकांक्षा थी जैसाकि आस-पास के कबीलों के सरदारों को भेजे गए पत्रों व संदेशों से प्रगट होता है"।

We may add also Ibn Warraq's remarks : "One can unhesitatingly agree with so many scholars that at Mecca,

Muhammad was totally honest and sincere in his conviction that he had conversed with the deity. But it cannot under any circumstances be denied that at Medina, his conduct and nature of his revelations changed". (*Why I am Not a Muslim, p.347*)

आधुनिक विद्वान इब्न बराक का मत है कि "कोई भी व्यक्ति बेहिचक उन अनेक विद्वानों से इस बात में सहमत होगा कि मक्का में मुहम्मद अपने इस दृढ़ विश्वास के प्रति पूरी तरह से ईमानदार और निष्ठावान था कि उसने अपने इष्ट देवता से बातचीत की है। लेकिन यह किसी भी परिस्थिति में नहीं नकारा जा सकता कि मदीना में उनका आचरण और उन पर नाज़िल आयतों का स्वभाव बदल गया" (व्हाई आई एम नॉट ए मुस्लिम, पृ. 347)

इसी प्रकार प्रोफसर एम.आर. बेग लिखता है–"जब मुसलमान संख्या बल में कम थे तो कुरान आक्रामक न होने की शिक्षा देती है। लेकिन बाद में जब वे सुदृढ़ और अरब-प्रदेश के स्वामी हो जाते है तो हम (कुरान में) युद्ध करने के आदेशों के संदर्भ पाते हैं।" (मुस्लिम डिलेमा इन इंडिया, पृ. 12)

Similarly the Encyclopedia of Islam says, "In Meccan Surahs of the Quran, patience under attack is taught; no other attitude was possible. But at Madina the right to repel attack appears, and gradually it became a prescribed duty to fight against, and subdue the hostile Meccans.....The Quranic passages speak always of the unbelievers who are to be subdued as dangerous or faithless.......It was now a *fard ala 1-Kifaya* (incumbent duty), a duty in general on all male, free adult Muslims......(to enter Muslim army)......It (Jihad) must continue to be done until the whole world is under the rule of Islam. It must be controlled or headed by a Muslim sovereign or Imam......The people, against whom jihad is directed, must first be invited to embrace Islam. On refusal, they have another choice. They may submit to Muslim rule, become dhimmis and pay jazia or fight. In the first case (i.e., of dhimmis) their lives, families and property are assured to them, but they have a definitely inferior status, with no technical citizenship, and a standing only as protected wards

(in the second case) if they fight, they and their families may be enslaved and all their property seized as booty.......If they embrace Islam.........they become part of Muslim community with all its (equal) rights and duties.......Apostates must be put to death."(*quoted by More pp.400-401*)

इस विषय में 'एन्साइक्लोपीडिया आफ़ इस्लाम' कहता है : कुरान के मक्काई सूराओं में आक्रमण के समय धैर्य रखने का शिक्षा दी गई हैं, अन्य कोई तरीक सम्भव नहीं है। लेकिन मदीनाई आयतों में आक्रमण को रोकना दिखाई देता है और धीरे-धीरे आक्रामक मक्काइयों के विरूद्ध लड़ना और उन्हें पराजित करना एक 'धार्मिक फ़र्ज़' कहा गया है। यहाँ कुरान की आयतें गैर-ईमान वालों, जिन्हें परास्त करना है, को खतरनाक या बेईमानवाला कहा गया है। यहाँ अब सभी पुरूष, स्वतंत्र युवा मुसलमानों को 'जिहाद फर्द अलकाफिया' किया गया" यानी आवश्यक धार्मिक कर्त्तव्य हो गया कि वे मुस्लिम सेना में भर्त्ती हों ... .यह (जिहाद) जब तक चलती रहनी चाहिए जब तक कि सारा विश्व इस्लाम के शासन के अधीन न आ जाए। इस जिहाद का नेतृत्व और नियंत्रण किसी मुस्लिम शासक या इमाम के अधीन होना चाहिए। जिन लोगों के विरूद्ध जिहाद की जाने वाली है उन्हें पहले इस्लाम स्वीकारने के लिए आमंत्रित करना चाहिए। यदि वे इन्कार करें तो उनके लिए दूसरा विकल्प है कि वे धिम्मी हो जाऐं और इस्लामी राज्य को स्वीकार कर लें और ज़िज़िया (टेक्स) दें। धिम्मी होने पर उनका जीवन, परिवार और सम्पत्ति की सुरक्षा की गांरटी होगी लेकिन उनकी हैसियत निश्चय ही निचली होगी और उन्हें नागरिकता नहीं मिलेगी परन्तु वे सुरक्षित हैसियत वाले होगें। यदि वे लड़े तो वे और उनके परिवार कैद हो सकते हैं और उनकी सारी सम्पत्ति '*माले गनीमत*' होगी ....यदि वे इस्लाम स्वीकार कर लें...........तो वे समस्त समान अधिकारों एवं कर्त्तव्य सहित मुस्लिम समुदाय के अंग होंगे। धर्म त्यागियों की हत्या कर देनी चाहिए।" (*वही, मोरे पृ. 400-401*)

पैगम्बर मुहम्मद ने मक्का में विश्वभर में इस्लामी राज्य की स्थापना की बात नहीं की, बल्कि मदीना में साफ़ कहा 'इस्लाम का उद्देश्य विश्व के अन्य सभी धर्मो को समाप्त करना है' देखिए कुछ मदीनाई आयतों को :

(*i*) "दीन (धर्म) तो अल्लाह की दृष्टि में इस्लाम ही है" (3:19, पृ. 46);

(*ii*) जो इस्लाम के सिवा कोई और 'दीन' चाहेगा तो वह कभी उससे (अल्लाह से) कबूल नहीं किया जाएगा और वह 'आख़िरत' में टोटा पाने वालों में से होगा।" (3:85, पृ. 54)

(*iii*) "तुम उनसे लड़ो यहाँ तक कि फ़ितना शेष न रह जाए और 'दीन' (धर्म) अल्लाह के लिए हो जाए।" (2:193, पृ. 30)

(*iv*) "उनसे युद्ध करो, यहाँ तक कि फ़ितना बाकी न रहे और 'दीन' (धर्म) पूरा का पूरा अल्लाह ही के लिए हो जाए।" (8:39 पृ. 152)

(*v*) "वही है जिसने अपने रसूल को मार्ग दर्शन और सत्यधर्म के साथ भेजा ताकि उसे तमाम 'दीन' (धर्म) पर प्रभावी कर दे, चाहे मुशरिकों को बुरा लगे।" (9:33 पृ. 160)

About the nature of Quranic verses at Mecca and Medina on Jihad, Syed Kamran Mirza remarks," : "Prophet Muhammad while he was in Mecca did not have too many supporters; hence, he was very weak in power compared to the Pagans. It was at that time he brought some soft verses (maximum one dozen in the whole Quran). But in Medina Muhammad quickly assumed both religious and political power and leadership over the whole Medina community. It was at that time he brought all those harsh/hateful (several hundereds of them) Quranic verses just to incite his followers to fight." (*Jihad Juggernaut, p. 48*)

इस विषय में सैयद कामरान मिर्ज़ा का मत है कि "पैगम्बर मुहम्मद जब मक्का में थे तब उनके समर्थक बहुत अधिक नहीं थे, और वे पैगनों की शक्ति के मुकाबले में बहुत कमज़ोर थे। उस समय उन्होंने कुछ उदार आयतें (अधिकतम एक दर्जन, कुल कुरान में) प्रगट कीं। लेकिन मदीना में मुहम्मद ने जल्दी ही धार्मिक और राजनैतिक शक्ति प्राप्त कर ली और सारे मदीना समुदाय पर नेतृत्व पा लिया। उस समय उन्होंने कुरान की वे समस्त कठोर व घृणापूर्ण आयतें (उनमें से सैंकडों) नाज़िल कीं जो अपने अनुयायियों को लड़ने को उकसाती हैं" (*जिहाद जुगरनॉट*, पृ. 48)

Similarly Maududi explained this change in policy as, "With migration to Medina, the struggle between Islam and unbelief entered a new phase. Hitherto, the message of Islam had been spread in the heart of disbelief......Even though they, (believers) were persecuted and subjected to many wrongs, they were carrying on missionary work there. After the migration, all these scattered Muslims gathered in Medina, formed a body-politic and established a small independent state." (Towards Understanding the Quran, Vol. 1 p. 41)

इसी प्रकार मौलाना मौदूदी लिखता है–"(मुहम्मद के) मदीना पहुंचने के बाद इस्लाम और गैर-ईमान वालों के बीच संघर्ष एक नऐ चरण में प्रवेश कर गया। अब तक इस्लाम का प्रचार हृदय से किया गया। हालांकि ईमान वाले प्रताडित और अनेक प्रकार से दंडित किए गए लेकिन वे वहाँ अपना मिशनरी कार्य करते रहे। लेकिन हिज़रा के बाद, सब जगह बिखरे मुसलमानों को मदीना में इकट्ठा किया गया, उन्होंने एक राजनैतिक संगठन बनाया और एक छोटा-सा "स्वतंत्र (इस्लामी) राज्य स्थापित किया" (टुवर्डस अंडरस्टेंडिंग दि कुरान, खं. 1 पृ. 41)

उपरोक्त विवेचन से साफ़ है कि मक्का में जब मुहम्मद के अनुयायी कम थे और वे सशस्त्र युद्ध करने की स्थिति में नहीं थे तो वे शान्ति, भाई चारे, सब्र और कुरान द्वारा समझाने बुझाने की बात करते थे। अतः मक्काई इस्लाम शान्ति का चेहरा है। विश्व में जहाँ कहीं इस्लाम कमजोर होता है वहाँ वे मक्काई इस्लाम की वकालत करते हैं और जब वे शक्तिशाली हो जाते हैं तो मदीनाई इस्लाम की भाषा बोलते है जिनमें मुसलमानों का गैर-मुसलमानों से सशस्त्र युद्ध करना, उनका एक अनिवार्य धार्मिक कर्त्तव्य या फर्ज़ हो जाता है। यह मदीनाई आक्रामक सशस्त्र युद्ध, इस्लाम का दूसरा चेहरा है। संक्षेप में इस्लाम के दो चेहरे हैं एक शान्ति का तो दूसरा आक्रामक युद्ध का जो कि शक्ति के अनुसार बदलते रहते हैं। परन्तु अन्तिम चेहरा सशस्त्र युद्ध ही का है।

अध्याय–7 पैगम्बर मुहम्मद के दो चेहरे : क्या और क्यो ?

कुरान में न केवल जिहाद और इस्लाम के दो चेहरे हैं बल्कि पैगम्बर मुहम्मद के भी दो चेहरे हैं—पहला मक्काई चेहरा एक मनुष्य का, और दूसरा मदीनाई चेहरा एक तानाशाह, राजनेता और आक्रान्ता का। मगर यह परिवर्तन भी एक साथ नहीं बल्कि धीरे-धीरे हुआ। मक्काई आयतों में मुहम्मद सिर्फ एक मनुष्य, अल्लाह के रसूल, प्रतिनिधि, संदेश वाहक और सचेतक मात्र हैं, परन्तु मदीना में पैगम्बर अल्लाह के बराबर हो जाते हैं। जहाँ दोनों की आज्ञाऐं मानना समान और अनिवार्य है, तथा पैगम्बर मुहम्मद का आज्ञा पालन ही मानो अल्लाह का आज्ञा पालन के समान है। देखिए कुछ आयतें—

मक्का में मुहम्मद का मानवीय चेहरा

मक्काई आयतों में पैगम्बर स्वयं कहता है कि मैं तो एक मनुष्य मात्र हूँ तथा केवल अल्लाह का सन्देश लोगों तक पहुंचाता हूँ। मैं कोई फरिश्ता नहीं हूँ, आदि

(*i*) कह दो "मैं तो केवल तुम्हीं जैसा एक मनुष्य हूँ।" (18:110, पृ. 259)

(*ii*) "मैं तुम्हारे ऊपर कोई हवालेदार तो हूँ नहीं।" (10:108, पृ. 184)

(*iii*) "मैं तुम पर कोई नियुक्त 'रखवाला' नहीं हूँ।" (6:104, पृ. 118)

(*iv*) "कह दो : मैं तुमसे यह नहीं कहता कि मेरे पास अल्लाह के खज़ाने हैं, और न मैं परोक्ष का ज्ञान रखता हूँ : न मैं तुमसे यह कहता हूँ कि "मैं कोई फरिश्ता हूँ। मैं तो बस उसी का अनुपालन करता हूँ जो मेरी ओर वह्य अल्लाह का संदेश की जाती है। कहो—क्या अंधा और आंखोवाला दोनों बराबर हो जाऐंगें ? क्या तुम सोच विचार कर काम नहीं लेते।" (6:50, पृ. 111-112)

(*v*) "उसी के पास परोक्ष की कुंजियाँ हैं जिन्हें उसके सिवा कोई नहीं जानता।" (6:59, पृ. 113)

(*vi*) "मैं तो केवल स्पष्ट रुप से 'सूचेत करने वाला' हूँ।" (29:50, पृ. 352)

(*vii*) "क्या मैं एक संदेश लाने वाला मनुष्य के सिवा कुछ और भी हूँ ?" (7:93, पृ. 246)

(*viii*) "मैं कोई पहला रसूल तो नहीं हूँ और मैं नहीं जानता कि मेरे साथ क्या किया जाएगा.........मैं तो केवल एक स्पष्ट 'सावधान करने वाला' हूँ।" (46:9, पृ. 451)

(*ix*) कह दो : "महिमावान है मेरा रब ! क्या मैं एक 'संदेश लाने वाला' मनुष्य के सिवा कुछ और भी हूँ?" (17:93, पृ. 246)

मदीना में मुहम्मद का शासक का चेहरा

मदीना में पैगम्बर मुहम्मद के शक्तिशाली हो जाने के बाद कुरान और हदीसों से ऐसा प्रतीत होता है कि वे एक तानाशाह, शासक, राजनेता और अल्लाह के समान हो गए हैं जैसे—

(*i*) "हमने जो भी रसूल भेजा, इसलिए भेजा कि अल्लाह की अनुमति से उसकी आज्ञा का पालन किया जाए।" (4:64, पृ. 75)

(*ii*) "जिसने रसूल की आज्ञा का पालन किया, उसने अल्लाह की आज्ञा का पालन किया।" (4:80, पृ. 77)

(*iii*) "नमाज़ का आयोजन करो और ज़कात दो और रसूल की आज्ञा का पालन करो ताकि तुम पर दया की जाऐ।" (24:56, पृ. 308)

(*iv*) "अल्लाह और 'रसूल' का आज्ञापालन करो।" (3:32; 8:46; 33:71; 49:14)

(*v*) "अल्लाह और रसूल की आज्ञापालन करने वाले के लिए जन्नत है और जो उनकी अवज्ञा करेगा उसे अल्लाह आग में डालेगा जिसमें वह सदैव रहेगा।" (4:13-14 पृ. 69)

(*vi*) "जो लोग अल्लाह और उसके रसूल का विराध करते हैं वे अपमानित और तिरस्कृत होकर रहेंगे। उनसे पहले के लोग अपमानित और तिरस्कृत हो चुके हैं। हमने स्पष्ट आयतें अवतरित कर दी हैं और इनकार करने वालों के लिए अपमानजनक यातना है।" (58:5, पृ. 497)

(*vii*) "कह दो ! यदि तुम अल्लाह से प्रेम करते हो तो मेरा अनुसरण करो, अल्लाह भी तुमसे प्रेम करेगा और तुम्हारे गुनाहों को क्षमा कर देगा। कह दो : अल्लाह और रसूल का आज्ञा पालन करो। फिर यदि वे मुंह मोड़ें तो अल्लाह भी इनकार करने वालों से प्रेम नहीं करता।" (3:31-32, पृ. 48)

इतना ही नहीं कुरान (*4 : 150-151*) अल्लाह और मुहम्मद के अनुसार दोनों एक ही हैं जो विभेद करते हैं, वे दण्डनीय है। जैसेः

(*viii*) "जो लोग अल्लाह और उसके रसूलों का इनकार करते हैं और चाहते हैं कि अल्लाह और उसके रसूलों के बीच विच्छेद करें, और कहते हैं कि हम कुछ को मानते हैं और कुछ को नहीं मानते और इस तरह वे चाहते हैं कि बीच की कोई राह अपनाएँ वहीं पक्के इनकार करने वाले हैं और हमने इनकार करने वालों के लिए अपमानजनक यातना तैयार कर रखी है"। (4:150-151, पृ. 86)

(*ix*) हे ईमान वालो! तुम अपनी आवाज़ों को नबी की आवाज़ से ऊँचा न करो'। (49 : 2, पृ. 463)

मदीना में मुहम्मद केवल मनुष्य नहीं रह जाते हैं बल्कि अन्तिम रसूल हो जाते हैं। देखिए कुरान (33 : 40, पृ. 371)

(*x*) मुहम्मद तुम्हारे पुरुषों में से किसी के बाप नहीं हैं, बल्कि वे अल्लाह के रसूल और नबियों के समापक (अन्तिम नबी) हैं।" (33 : 40, पृ. 371)

उपरोक्त आयतों में अल्लाह और रसूल दोनों की आज्ञाऐं मानने का अर्थ यही है कि प्रतिष्ठा में वे दोनों एक समान हैं। उनमें कोई भेद नहीं है। साथ ही अल्लाह तो दिखाई नहीं देता है, प्रत्यक्ष में तो अल्लाह के रसूल, मुहम्मद ही दिखाई देते हैं। अतः उनकी आज्ञा मानना ही अन्तिम

आदेश रह जाता है। इसीलिए इस्लाम में हदीसों का बहुत महत्व है जिनमें रसूल की वाणी है।

कुरान में अल्लाह भी मुसलमानों को आदेश देता है कि तुम अपने जीवन की सब गतिविधियों में रसूल को अपना आदर्श मानो : "निस्संदेह तुम्हारे लिए अल्लाह के रसूल में एक उत्तम आदर्श है अर्थात् उस व्यक्ति के लिए जो अल्लाह और अन्तिम दिन की आशा रखता हो।" (33:21, पृ. 369)

पैगम्बर मुहम्मद और अल्लाह एक समान

इसके अलावा, मुहम्मद ही अल्लाह के बराबर होने का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि जब कोई स्त्री-पुरूष इस्लाम स्वीकार करता है तो उसे शहदह (ईमान की घोषणा) करनी पड़ती है जो कि इस प्रकार है : "ला इलाह इल्लाह मुहम्मद रसूललिल्लाह" यानी "वह यह मानते हुए घोषणा करता है कि "अल्लाह के सिवा और कोई दूसरा पूज्य नहीं है, और मुहम्मद उसका रसूल है।" इसका अर्थ यह हुआ कि किसी को इस्लाम में आस्था रखने के लिए सिर्फ अल्लाह में ही विश्वास रखना काफ़ी नहीं है बल्कि उसे मुहम्मद को अल्लाह का रसूल और उसकी आज्ञाऐं मानना भी अनिवार्य है। अतः यहाँ दोनों को एक साथ समान मानने की अनिवार्यता ने मुहम्मद को अपने आप ही अल्लाह के समकक्ष बिठा दिया है।

आश्चर्य की बात तो यह है कि 'ईमान की घोषणा' के दोनों भाग, कुरान में एक साथ कहीं नहीं हैं। पहला भाग 'अल्लाह के सिवा कोई और पूज्यनीय नहीं है," आयत (28:70, पृ. 344;, 37:35, पृ. 394, और 47:19 पृ. 457) में सुस्पष्ट है और दूसरा भाग "मुहम्मद अल्लाह के रसूल है" आयत (3:144, पृ. 59 : 33:40 371 और 48:29, पृ. 462) में है। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मदीना में जब मुहम्मद सैनिक शक्ति में मज़बूत हो गए तो उन्होंने अपने को अल्लाह के समकक्ष घोषित कर दिया जैसे कि हदीसों में कहा गया हैं "अल्लाह के देवदूत ने कहा "जो कोई मेरा आज्ञापालन करता है, वास्तव में वह अल्लाह का आज्ञापालन करता है और जो कोई मेरी अवज्ञा करता है, वास्तव में वह

अल्लाह की अवज्ञा करता है।'' (बुखारी, खं. 9:251, पृ. 189; माजाह खं. 4:2859, पृ. 19)।''

जब पैगम्बर मुहम्मद शक्तिशाली हो जाते हैं तो वह अल्लाह के सह अधिष्ठाता के समान व्यवहार करते हैं और मुसलमानों को स्वविवेक से आत्मनिर्णय के अधिकार से वंचित कर देते हैं। जैसे—''न किसी ईमानवाले पुरूष और न किसी ईमान वाली स्त्री को यह अधिकार है कि जब अल्लाह और उसका रसूल किसी मामले का फ़ैसला कर दें तो फिर उन्हें अपने मामले में कोई अधिकार शेष रहे। जो कोई अल्लाह और उसके रसूल की अवज्ञा करे तो वह खुली गुमराही में पड़ गया।'' (33:36 पृ. 371)

इतना ही नहीं अल्लाह और पैगम्बर के सम्बंधों में चरमोत्कर्ष तो तब होता है जब अल्लाह और फरिश्ते उसके पूजक बन जाते हैं: जैसे ''निस्संदेह अल्लाह और उसके फरिश्ते नबी पर रहमत भेजते हैं। ऐ ईमान लाने वालो तुम! भी उस पर रहमत भेजो और खूब सलाम भेजो।'' (33:56 पृ. 373)। परन्तु अनवर शेख़ ने अपनी पुस्तक 'इस्लामः एक अरब साम्राज्यवाद' (पृ. 57) पर लिखा है :

''इस प्रकार आयत (33:56) का अर्थ है कि 'अल्लाह और उसके फरिश्ते मुहम्मद की स्तुति या आराधना करते हैं और वैसा ही मुसलमानों को करना चाहिए, लेकिन उचित सम्मान के साथ''। इस्लामी इतिहास से पता चलता है कि मक्का में मुहम्मद के यहूदियों और ईसाइयों से अच्छे सम्बंध थे। यहाँ तक कि यहूदियों और मुसलमानों का किब्ला एक ही था जो मदीना में भी 11 फरवरी 624 तक रहा। परन्तु मुहम्मद के शक्तिशाली हो जाने पर न केवल किब्ला बदला बल्कि उन्होंने यहूदियों को अरेबिया से निकालने का आदेश भी दे दिया जैसे—

(*i*) ''पैगम्बर मुहम्मद ने मदीना में बेतउल मिदरास में बैठे यहूदियों से कहा : ओ यहूदियो ! सारी पृथ्वी अल्लाह और उसके 'रसूल' की है। यदि तुम इस्लाम स्वीकार कर लो तो तुम सुरक्षित रह सकोगे। मैं तुम्हें इस देश से निकालना चाहता हूँ। इसलिए यदि तुममें से किसी के पास सम्पत्ति है तो उसे इस सम्पत्ति को बेचने की आज्ञा दी जाती है वर्ना तुम्हें

मालूम होना चाहिए कि सारी पृथ्वी अल्लाह और उसके 'रसूल' की है।" (बुखारी, खं 4:392, पृ. 259-260; मिश्कत खं. 2:217, पृ. 422)

(*ii*) "मैं अरेबिया प्रायद्वीप से सभी यहूदियों और ईसाइयों को बाहर निकाल दूंगा और मुसलमानों के अलावा किसी को नहीं रहने दूंगा। पैगम्बर मुहम्मद ने (उमर को) घोषणा करते हुए कहा।" (मुस्लिम, खं. 3:4366, पृ. 1162-1163)

(*iii*) पैगम्बर मुहम्मद ने अपनी मृत्यु शय्या पर लेटे हुए मुसलमानों को आदेश दियाः "कि वे अरेबिया प्रायद्वीप से सभी यहूदियों का निकाल दें।" (मिश्कत 2:28 पृ. 443, बुखारी खं. 4:288, पृ. 183)

मुहम्मद की उपरोक्त आज्ञाओं के परिणाम स्वरूप 623 से 628 एडी तक, यहूदियों के बान कैनुका (624), बानू नादिर (जून 625), बानू कुरेज़ा (मार्च 627), बानू मुस्तलिक (दिस. 626), बानू जौन (अप्रैल 625) और खेबर (जून 628), के कबीलों को या तो कत्ल कर दिया गया या अरेबिया से निकाल दिया। यहूदियों का सबसे बड़ा कत्ले आम बानू कुरेजा का हुआ जिसमें 800 यहूदियों को मदीना के बाजार में कत्ल कर के खाईयों में डाल दिया गया। (म्यूर पृ. 318, रोडिंसन पृ. 213-214, मुस्लिम खं. 3:4370, पृ. 1164-1165)

मदीना में सैनिक शक्तिकरण—सितम्बर 622 में पैगम्बर मुहम्मद के साथ लगभग एक सौ लोग मक्का से मदीना आए थे। मगर मार्च 630 में उन्होंने 10,000 सैनिको के साथ मक्का पर हमला कर विजय प्राप्त की थी तथा अक्टूबर 630 में टुबक के मैदान में पैगम्बर के साथ 30,000 सैनिक थे। (वही. वाट पृ. 397)

आलोचकों की हत्या—624 में बद्र की लड़ाई के बाद कुछ यहूदी कवियों ने पैगम्बर मुहम्मद के कार्यों की आलोचना की। परिणामस्वरूप कवियत्री मरवान की पुत्री अस्मा को, जनवरी 624 को अबफाक की फरवरी 624 में और कवि काव इव अशरफ़ की जुलाई 624 (म्यूर पृ. 239-248) में हत्या कर दी गई।

मदीना में पैगम्बर के विवाह—वाट के अनुसार, हालांकि मक्का में पैगम्बर मुहम्मद 595 से 619 तक एक पत्नी खदीजा के साथ रहे, परन्तु

मदीना में राजनैतिक सत्ता पा जाने पर उन्होंने कम से कम 9 विवाह किए।

1) जनवरी 623 आयशा (9 वर्ष) मुहम्मद (53 वर्ष); 2) मार्च 625 हफ्साह वि. उमर (18 वर्ष), मुहम्मद (55 वर्ष); 3) अप्रेल 626, उम्म सलमाह लगभग (30 वर्ष) मौहम्मद (56 वर्ष); 4) अप्रेल 626, जैनव विन्त खुजमाह (30 वर्ष) मौहम्मद (56 वर्ष); 5) जून 627 जौरियाह (20 वर्ष) यहूदी, मुहम्मद (57 वर्ष); 6) मई 627, जैनव विन्त जहश (लगभग 38 वर्ष); मुहम्मद 57 वर्ष, 7) जुलाई 628 उम्म हबीवा विन्त अमी सूफियान (35 वर्ष) मुहम्मद (58 वर्ष); 8) जुलाई 628, सौफियाह विन्त हुययाह (यहूदी खैवर) मौहम्मद (58 वर्ष); और 9) जुलाई 629, मैमुवाह विन्त हरीथ (27 वर्ष), मौहम्मद (59 वर्ष)। (मुहम्मद एट मदीना-डब्लू. मौंटगोमरी वाट, 1956 पृ. 393.397)।

पैगम्बर मुहम्मद की मक्का और मदीना में जीवन पद्धति एवं चिन्तन पर अनेक विद्वानों ने अपने विचार लिखे है। यहाँ हम कुछ प्रमुख लेखकों के निष्कर्षों को देर रहे है।

(1) Muir in his book "The Life of Mahomet" writes : "In the Meccan period of his life, there certainly can be traced no personal ends or unworthy motives belying this conclusion... Mohammad then was nothing more than he professed to be, "a simple Preacher and a Warner", he was the despised and rejected prophet of a gainsaying people, having no ulterior object but their reformation. He may have mistaken the right means for effecting this end, but there is no sufficient reason for doubting that he used those means in good faith and with an honest purpose."

"But the scene changes at Medina. There temporal power, aggrandisement, and self-gratification mingled rapidly with the grand object of the Prophet's life; and they were sought and attained by just the same instrumentality. Messages from heaven were freely brought down to justify political conduct, in precisely the same manner as to inculcate religious precept. Battles were fought, executions ordered, and territories

annexed, under cover of the Almighty's sanction. Nay, even personal indulgences were not only excused but encouraged by the divine approval or command. A special license was produced, allowing the Prophet many wives; the affair with Mary the Coptic bondmaid was justified in a separate Sura; and the passion for the wife of his own adopted son and bosom friend was the subject of an inspired message in which the Prophet's scruples were rebuked by God, a divorce permitted, and marriage with the object of his unhallowed desires enjoined. If we say that such "revelations" were believed by Mohammad sincerely to bear the divine sanction, it can only be in a modified and peculiar sense. He surely must be held responsible for that belief; and in arriving at it, have done violence to his judgement and the better principles of his nature.

"As the natural result, we trace from the period of Muhammad's arrival at Medina a marked and rapid declension in the system he inculcated. Intolerance quickly took the place of freedom; force of persuasion. The spiritual weapons designed at first for higher objects were no sooner devoted to the purposes of temporal authority, than temporal authority was employed to give weight and temper to those spiritual weapons. The name of the Almighty imparted a terrible strength to the sword of the State; and the sword of the State yielded a willing return by destroying "the enemies of God" and sacrificing them at the shrine of the new religion. *"Slay the unbelievers wheresoever ye find them,"* was now the watchword of Islam. *"Fight in the ways of God until opposition be crushed and the Religion become the Lord's alone."* The warm and simple devotion breathed by the Prophet and his followers at Mecca, when mingled with worldly motives, soon became dull and vapid; while faith degenerated into a fierce fanaticism, or evaporated in a lifeless round of formal ceremonies." *(pp. 519-521).*

However, Muir's final judgement is, **"The sword of Mahomet; and the Coran (Koran) are the most stubborn enemies of civilisation, liberty and truth, which the world has yet known."** *(Caetani Annali dell' Islam, trans. in MW Vol. VI; Ibn Warraq, p. 88)*

पैगम्बर मुहम्मद का जीवनी लेखक म्यूर का कथन है कि "मक्काई जीवन में मुहम्मद एक धर्म प्रेरित निष्ठावान् और सत्यानुवेषी व्यक्ति था। परन्तु बाद में मदीनाई जीवन में वह अपने स्वाभाविक रूप में प्रगट हो जाता है, जहाँ उसमें राजसत्ता और सांसारिक आकांक्षाओं की प्रमुखता हो जाती है।" (म्यूर खं.; पृ. 503-506, इब्न वराक, पृ. 87)

म्यूर फिर लिखता है कि "मक्काई काल खंड के उसके जीवन में निश्चय ही कोई व्यक्तिगत स्वार्थ और असम्मानीय कृत्यों का लेश मात्र भी अंश नहीं था। उस समय मुहम्मद एक सामान्य उपदेशक और सचेतक के अलावा कुछ नहीं था। वह एक उपेक्षित और तिरस्कृत लाभानुवेषी लोगों का पैगम्बर था जिसका उनके सुधार के अलावा अपना निजी कोई गुप्त उद्देश्य नहीं था। उसने सही साधनों को इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए गलत समझ लिया हो, लेकिन इस बात पर संदेह करने के पर्याप्त कारण नहीं है कि उसने उन साधनों को सद्भावना के साथ अच्छे उद्देश्य के लिए प्रयोग किया।

लेकिन मदीना में दृश्य बदल जाता है। वहाँ सांसारिक शक्ति, अतिकथन और स्वंय-तुष्टि, पैगम्बर के जीवन के महान उद्देश्य के साथ तेज़ी से मिल गए और वे ठीक उन्हीं तरीकों से खोजे और पूरे किए गये। राजनैतिक आचरणों को न्यायोचित ठहराने के लिए आसमान से (अल्लाह की तरफ से) बेरोक-टोक सन्देश लाए गए, ठीक उसी प्रकार से जैसे कि धार्मिक सन्देश व उपदेश आते थे।

सर्वशक्तिमान (अल्लाह) की स्वीकृति के नाम पर लड़ाइयाँ लड़ी गई, प्राणदण्डों के आदेश दिए गए और राज्यों को हड़प लिया गया। इतना ही नहीं, यहाँ तक कि व्यक्तिगत तृप्ति के लिए किए गए अनुचित कार्यों को न केवल क्षमा कर दिया गया बल्कि दैवी स्वीकृति या आदेश के नाम पर उनको बढ़ावा दिया गया। एक विशेष लाइसेंस रचा गया जिसके द्वारा पैगम्बर (मुहम्मद) को अनेक पत्नियाँ रखने का अधिकार दिया गया। एक विशेष सूरा द्वारा पैगम्बर को मिश्र देश की बांदी मैरी के साथ सम्बन्धों को उचित ठहराया गया तथा अपने ही गोद लिए हुए बेटे और अन्तरंग मित्र की पत्नी के प्रति मनोभावों को ईश्वर प्रेरित सन्देश कहा गया जिसमें कि पैगम्बर के संकोच को फटकारा

गया। परिणामस्वरूप (पति द्वारा) तलाक स्वीकृत किया गया और पैगम्बर की असीम इच्छाओं की पूर्ति के लिए विवाह की स्वीकृति दी गई। यदि हम यह कहें कि ऐसे 'इलहामों' में मुहम्मद, वास्तव में विश्वास करते थे, जिनका दैवी स्वीकृति मिली हुई है, तो यह एक परिवर्तित और विचित्र भाव में ही होगा। इस निर्णय तक पहुँचने और उस विश्वास के लिए निश्चय ही पैगम्बर को उत्तरदायी ठहराना चाहिए। ऐसा करने में उन्होंने अपने उत्तम सिद्धान्तों के साथ अविचार शीलता की है।

इसके स्वाभाविक परिणामस्वरूप मुहम्मद के मदीना में आने के बाद से उन्होंने मक्का में जो व्यवस्था स्थापित की थी, उसमें हम एक सुस्पष्ट और महान अधोपतन देखते हैं। शीघ्र ही असहिष्णुता ने स्वतंत्रता का और जबरदस्ती ने अनुनय-विनय का स्थान ले लिया। प्रारम्भ में जो उच्च आदर्शों को पाने के लिए आध्यात्मिक साधन स्थापित किए गए थे, वे जल्दी ही सांसारिक सत्ता हथियाने के लिए अपनाए जाने लगे, न कि सांसारिक सत्ता को इन आध्यात्मिक साधनों को मजबूत करने के लिए प्रयोग किया जाता। सर्व शक्तिमान के नाम पर राज्य की तलवार को एक भयानक शक्ति प्रदान की गई और राज्य की तलवार जिसने 'अल्लाह के दुश्मनों' को समाप्त करने और उन्हें नवीन धर्म की बलि वेदी पर चढ़ाने का वांछित प्रतिफल दिया। अब इस्लाम का नारा था कि *'गैर-ईमान वालों को जहाँ कहीं भी तुम पाओ, कत्ल करो "अल्लाह के मार्ग में युद्ध करो जब तक कि विरोध समाप्त न हो जाए और सारे विश्व में केवल अल्लाह का ही धर्म फैलजावे।"* मक्का में पैगम्बर और उसके अनुयायियों में जिस प्रभावकारी और सीधी-साधी ईश्वर भक्ति का प्रचार किया, अब वह सन्देश सांसारिक उद्देश्यों में घुल मिल गया तथा शीघ्र ही वह धर्म अप्रभावी और फीका हो गया तथा धार्मिक आस्था पतित होकर खूंख्वार मतान्धता में बदल गई अथवा निर्जीव औपचारिक कर्म काण्डों में उलझकर रहगई।" (वही पृ. 519-521)।

इसके अतिरिक्त म्यूर का अन्तिम निर्णय यह है कि "मुहम्मद की तलवार और कुरान, मानव सभ्यता, स्वतंत्रता और सत्य के सबसे बड़े दुराग्रही शत्रु हैं, जिसको कि विश्व ने अभी तक जाना है।" (इन्ब बराक, पृ. 88)

(2) In the same tone, Iranian scholar Ali Dashti finds clear differences between Mecca and Medinite ayats and comments in his book *"Twenty Three Years : A Study of the Prophetic Career of Muhammad"* as below :

"The hejira started a great historical transformation, but also followed from a transformation of Muhammad's personality which requires miticulous psychological and spiritual analysis." (*p. 80*)

"(At Mecca), Muhammad was devout and free from the vices of his time. He pictured the end of the world and the Day of judgement as near at hand. With his thoughts fixed on the Hereafter, he implored his Meccan compatriots to revere the Lord of the Universe, and condemned violence, injustice, hedonism, and neglect of the poor. Like Jesus, he was full of compassion. After the move to Madina, however, he became a relentless warrior, intent on spreading his religion by the sword, and a scheming founder of a state. A Messiah was transformed into a David. A man who had lived for more than twenty years with one wife became inordinately fond of women." (*p. 81*).

"After the move to Madina, at the age of 53, *i.e.* at an age when most men's physical and emotional faculties are on the wane, a new Muhammad emerged. During his last ten years which he spent at Madina, he was not the same man as the Muhammad who for thirteen years had been preaching humane compassion at Mecca. The Prophet bidden by God "to warn your tribe, your nearest kin" (*sura 26, verse 214*) reappeared in the garb of the Prophet intent on subduing his own tribe and on humbling the kinsmen who for thirteen years had mocked him. Shedding the gown of the warner to "the mother town (*i.e.* Mecca) and the people around it" (*sura* 42, verse 5), he donned the armor of the warrior who was to bring all Arabia from the Yaman to Syria under his flag." *(p. 81)*

(2) ईरानी विद्वान अली दाष्टी पैगम्बर मुहम्मद के मक्काई और मदीनाई जीवन के बारे में लिखता है: "हिज़रा (मुहम्मद का मक्का से मदीना आना) ने न केवल एक महान ऐतिहासिक परिवर्तन को जन्म दिया, परन्तु पैगम्बर मुहम्मद के व्यक्तित्व में भी परिवर्तन हुआ जिसकी

मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से विश्लेषण करने की जरूरत है।" (वही पृ. 80)

"मुहम्मद (मक्का में) तत्कालीन दुर्व्यसनों से मुक्त एवं पवित्र व्यक्ति थे। उन्होंने निकट भविष्य में ही विश्व का अन्त (आख़िरत) और 'न्याय के दिन' को चित्रित किया। उनके विचार 'आखिरत' पर टिके होने के कारण उन्होंने मक्कावासियों को संसार के मालिक की पूजा करने पर बल दिया तथा हिंसा, अन्याय, प्रेयवाद और गरीबों की उपेक्षा की निन्दा की। ईसा मसीहा की तरह वे यहाँ करूणा मूर्ति थे। परन्तु मदीना को पलायन करने के बाद, वे अपने धर्म (इस्लाम) को तलवार की धार से बढ़ाने के लिए एक निष्ठुर योद्धा तथा एक राष्ट्र संस्थापक एवं निर्माता हो गए। एक मसीहा, एक डेविड में परिवर्तित हो गया। एक इन्सान जो बीस साल से अधिक (लगभग 24 साल) समय तक एक पत्नी के साथ रहा, वह यहाँ असाधारण रूप से स्त्रियों का शौक़ीन हो गया।" (वही पृ. 81)

"मदीना को पलायन के बाद, तिरेपन वर्ष की आयु में, यानी एक ऐसी आयु जिसमें कि मनुष्य की अधिकांश शारीरिक और भावनात्मक कार्यक्षमता घटने लगती है, तब एक नया मुहम्मद प्रगट हो गया। अपने जीवन के आखिरी दस साल, जो उसने मदीना में बिताए, तब वह वही मुहम्मद नहीं था जो मक्का में तेरह वर्षों तक मानवीय करूणा का उपदेश देता रहा था। वह पैगम्बर जिसे अल्लाह ने "अपने कबीले और अपने सगे सम्बन्धियों को सचेत करने के लिए भेजा था (26:214), वही पैगम्बर के रूप में उभरकर अपने ही कबीले के लोगों और अपने ही सगे सम्बन्धियों, जिन्होंने तेरह वर्षों तक उस का मज़ाक उड़ाया, को अपमानित करने लग गया। अपने मातृनगर (मक्का) और उसके रहने वालों के एक सचेतक का चोगा उतारकर उसने एक योद्धा की पोशाक पहन ली जो कि यमन से लेकर सीरिया तक का राज्य अपने झंडे तले लाना चाहता था।" (वही, पृ. 81)

(3) In this context, Caetani, while writing at the beginning of the century, came to a similar conclusion : "In Medina,

Muhammad, is far more sure of himself, is conscious of his superiority. It is thus the person of Mohammed that stands out above all in the front rank, till to God is given a secondary position in His capacity as the auxiliary of the Prophet. He is no longer the Supreme Being, for whose service everything should be sacrificed, but rather the all-powerful Being who aids the Prophet in his political mission, who facilitates his victories, consoles him in defeat, assists him in unravelling all the mundane and worldly complications of a great Empire over men, and helps him smooth over the difficulties which rise up every day as he works out these new phases of his prophetic and political career. This ***"deus ex machina"*** becomes supremely useful to him in a society of rude, violent, sanguinary men, quickly angered, immoveable in hatred and their passion for revenge, indifferent towards human blood, greedy of plunder, changeable as the wind in their sympathies....It is from [Muhammad's] mouth and not from God that [Muhammad's men] await replies to questions, the verdict which is to decide their destinies, and for the most part it is no longer God that counts but only the Prophet. Mohammad is a fact more visible and tangible every day; God becomes ever more a useful theory, a supreme principle, who from above the heavens follows with affectionate solicitude the capricious movements and the neither few nor small weaknesses of his favorite prophet, assisting him with legions of angels in brigand expeditions, meeting with revealed verses every troublesome question, smoothing over errors, legalising faults, encouraging fierce instincts with all the immoral brutality of the tyrannical God of the Semities.

If Mohammad deviated from the path of his early years, that should cause no surprise; he was a man as much as, and in like manner as, his contemporaries, he was a member of a still half-savage society, deprived of any true culture, and guided solely by instincts and natural gifts which were decked out by badly understood and half-digested religious doctrines of Judaism and Christianity. Mohammad became thus the more easily corruptible when fortune in the end smiled upon him ...[In Medina], he offered very little resistance to the corrupting action of the new social position, more particularly in view of the fact

that the first steps were accompanied by bewildering triumphs and by fatal sweetness of practically unlimited political power...The deterioration of his moral character was a phenomenon supremely human, of which history provides not one but a thousand examples. It is easier to die holy on the cross or at the stake than on a throne after a titanic struggle against pitiless and obstinate enemies. The figure of Mohammad loses in beauty, but gains in power." *(Caetani ibid ; Warraq, ibid pp. 88-89).*

(3) इस संदर्भ में केटानी का मत है कि "मदीना में, मुहम्मद कहीं अधिक आत्म-विश्वासी हैं तथा अपनी श्रेष्ठता के प्रति अधिक सजग हैं। इस प्रकार यहाँ मुहम्मद का व्यक्तित्व सर्वोच्च श्रेणी में आ जाता है जब कि अल्लाह भी दूसरी श्रेणी में आकर पैगम्बर का सहायक हो जाता है। वह अब सर्वोच्च सत्ता नहीं रह जाता है जिसकी सेवा के लिए सब कुछ" त्याग देना चाहिए बल्कि सर्वशक्तिमान परमेश्वर जो कि पैगम्बर की उसके राजनैतिक उद्देश्य में, जो उसकी विजयों में सहायता करता है, पराजय में उसको आश्वासन देता है, जो एक विशाल साम्राज्य की सभी सांसारिक और ऐहिक पेचीदियों को सुलझाने में मनुष्यों से अधिक सहायता करता है तथा मुहम्मद के पैगम्बरीय एवं राजनैतिक जीवन में दिन प्रतिदिन आने वाली समस्याओं का हल निकालता है। ऐसा सहायक, एक ऐसी सोसाइटी के लिए अत्यन्त उपयोगी हो जाता जो कि उजड्ड, आक्रामक तथा रक्तपिपासु लोगों की है जो जल्दी ही नाराज़, घृणा में अचल, बदला लेने के आतुर, मानव हत्या के प्रति विरक्त, लूट के लिए लालची तथा हवा के साथ बहने वालों की है, आदि। यह (मुहम्मद) की वाणी है, न कि ईश्वर की वाणी जिसकी कि (मुहम्मद के लोग) अपने प्रश्नों के उत्तरों के लिए प्रतीक्षा करते हैं और यह उत्तर उनके भावी जीवन के मार्ग निर्धारित करेगा और अधिकांश मामलों में, अल्लाह नहीं, बल्कि पैगम्बर ही निर्णय देता है।

मुहम्मद, प्रतिदिन सामने सुस्पष्ट दिखाई देने वाला और साक्षात् एक असलियत है। ईश्वर सदैव के लिए एक अधिक उपयोगी सिद्धांत एवं एक श्रेष्ठ मत हो जाता है जो कि ऊपर आसमानों से अपनी प्यार

भरी व्याकुलता या हास्यास्पद गति-विधियों सहित तथा न कम, न छोटी कमज़ोरियों सहित अपने प्रिय पैगम्बर की मदद करता है, जो अनेकों फरिश्तों सहित लूटमार के अभियानों में सहायता करता है तथा प्रत्येक कठिन सवाल का उत्तर देता है। गलतियों को सुधारता है, अपराधों को विधि सम्मत बनाता है, तथा सेमिटीय समाज के अत्याचारी देवता के भयानक मनोभावों को प्रोत्साहन देता है। यदि मुहम्मद अपने पिछले वर्षों के मार्ग से विचलित हो गया तो इससे किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिए क्योंकि वह भी अपने काल के अन्य साधारण मनुष्यों की तरह एक मनुष्य था। वह एक-अर्ध सभ्य सोसाइटी का सदस्य था, एवं किसी सच्ची संस्कृति से अछूता था तथा जोकि स्वाभाविक मनोभावों से आदेशित और प्राकृतिक मनोभावों तथा ईसाइयत और यहूदीमत को पूर्णतया न समझने के कारण था। इस प्रकार मुहम्मद अधिक आसानी से भ्रष्टनीय हो गया जबकि अन्त में सौभाग्य उसके जीवन में मुस्कराया। (मदीना में)। अपनी नई सामाजिक स्थिति में उसने भ्रष्टकारी तत्वों एवं कार्यों का बहुत कम विरोध किया, विशेषकर जबकि उसके प्रयासों को आश्चर्यजनक सफलता मिली जिसके साथ असीमित राजनैतिक सत्ता भी मिली। उसके नैतिक चरित्र में पतन एक उच्चस्तरीय मानवीय घटना थी जिसके कि इतिहास में एक नहीं,हज़ारों प्रमाण मिलते हैं। क्रास या स्टेक पर एक पवित्रात्मा के रूप में मर जाना उससे कहीं सरल है जितना कि एक निर्दयी और जिद्दी शत्रु पर विजय प्राप्त करने व राजगद्दी पर बैठने के बाद। मुहम्मद का जीवन सुन्दरता में पराजित, लेकिन राज सत्ता में विजयी प्रतीत होता है।" (वराक, पृ. 88-89)

(4) While replying to the reasons in the changing behavior of the Prophet, Walker argues, : "Two likely reasons for this change have been advanced. To begin with, in Medina Muhammad no longer had the restraining hand of his wife Khadija to guide him. She had died a little over two years before the Hegira, and with her death, says Sprenger, *"Islam lost in purity and the Koran in dignity"*. It has further been suggested that Muhammad's seizures, which had apparently remained untreated, had caused a slow but progressive impairment of

his state of his mind, which continued to worsen during his ten remaining years in Medina."

"Hitherto restricting himself to one wife, Muhammad soon became polygamous. His increasing preoccupation with women during the Medinan period became painfully evident. At the same time, his ambition soared. He was now desirous of worldly success, and indulged in political opportunism. His personal conduct and his religious teachings declined in quality as his influence increased." (*ibid, p. 221*)

"The persecuted reformer who lacked all temporal authority in Mecca, had become in Medina an administrator and statesman, general and warlord, judge and legislator, tribal ruler and worldly prince, sovereign potentate and patriarch of the people. He attained a completely new status, achieving absolute authority, with the power of life and death over individuals, families and entire tribes. He was as free to exercise this authority without restraint, and often succumbed to the temptations of power." (*pp. 221-222*)

"He moved from tolerance to bigotry. The man of peace who once bore opposition with fortitude now emerged as overbearing and autocratic, bent on vengeance against his enemies. He recalled witn bitterness the rejection of his prophethood by Jews and Christians, and dealt with them accordingly. He could not forget his treatment by the Meccans, and led his followers on raids on their peaceful merchant caravans. He ordered the assassination of those who opposed or ridiculed him. He directed several military campaigns, ending in a command for the mass killing of unbelievers and the waging of war for the propagation of Islam." (*p. 222*).

Walker further observed :

"Muhammad had once asserted that God had 'appointed peoples and tribes that you might have knowledge of one another' (49 : 13), and that it was one of the signs of God that he had created a diversity of languages and complexions among people' (30 : 21). Now, in Medina, Arabic was held up, as the language of God and the angels. Now, on the day of resurrection, all sinners will become black-faced, and the faces

of those who believe will shine white (3 : 102). Now, the Arabs are portrayed as a superior race, and the best nation ever brought forth unto mankind (3 : 106)."

"During the last years of Muhammad's life some of his more zealous followers accorded him reverential honor, amounting almost to deification (*Glubb, p. 268*). Everything associated with him was regarded as being endowed with a special blessed virtue (*baraka*)." (*p.* 222).

Walker further observed :

"The preacher and warner of Mecca became, in Medina, a religious pontiff and divine oracle. Where he had once made no distinction between his own message and the prophets and the holy scriptures of other peoples, he now asserted that all earlier revelations were incomplete and flawed, and that Islam, sent down through him, was the only perfect faith, to be exalted above every religion' (*48 : 28*)". (*p. 223*)

"All the prophets before him were only his forerunners. He was the last and greatest among those to whom divine revelations had been vouchsafed. He was the seal of the prophets. With him the succession of prophets had ended, the gates of prophecy were shut, the tongue of prophecy was silenced."

"In the Meccan suras Allah is mighty indeed, and there is none besides Him. His name alone must be glorified. He alone must be obeyed. **In the Medinan chapters, the stress is on Muhammad as the leader of the new community and founder of a new religion. Muhammad– the messenger becomes as important as the message he is elected to bring, and almost as important as Allah from whom the message is brought. In seals and talismans the names of Muhammad and Allah are linked and interwined."**

"Muhammad begins to be mentioned in the same breath as the Almighty, and almost invariably it is Allah and his prophet to whom allegiance is due. In one hadith Muhammad says, "He who does not believe in me does not believe in God" (*Kazi and Flynn, p. 123*). Since Muhammad now bears the authority

of God, he is the one whom obedience is due. As the Koran says, *"Who obeys the Prophet, obeys God"*(4 : 80) (*ibid. p. 223*).

(4) मदीना में पैगम्बर मुहम्मद के व्यवहार में परिवर्तन के कारणों का उत्तर देते हुए वाकर तर्क देता है : "इस परिवर्तन के दो सम्भावी कारण प्रस्तुत किए गए हैं : पहला मदीना में पैगम्बर मुहम्मद को उसकी पत्नी खदीजा के समान रोक-टोक एवं मार्ग दर्शन करने वाला कोई व्यक्ति नहीं था। उसका मुहम्मद के मक्का से मदीना को हिज़रत करने से दो वर्ष पहले निधन हो चुका था" और उसके निधन के साथ ही, स्प्रेंगर लिखता है कि "इस्लाम में शुद्धता (मौलिकता) और कुरान में गरमिा समाप्त हो गई।" (Islam lost in purity and Koran in dignity) और इसके अलावा यह भी सुझाया गया है कि मदीना के शेष दस वर्षों में मुहम्मद की आधिकारकता, जो कि सुधारी नहीं गई, तथा उसकी मानसिक स्थिति में, धीमी गति से लगातार गिरावट आने लगी।"

"अब तक स्वयं को केवल एक पत्नी तक सीमित रखने वाला मुहम्मद जल्दी ही बहुविवाहवादी हो गया। मदीनाई कालखंड में उसका स्त्रियों के साथ अधिकाधिक व्यस्त रहना दुखदता के साथ सुस्पष्ट हो गया। साथ ही साथ उसकी आकांक्षाऐं आसमान छूने लगी। अब वह सांसारिक सफलताओं का ज्यादा इच्छुक हो गया और राजनैतिक अवसरवादिता में अधिक व्यस्त रहने लगा। जैसे-जैसे उसका प्रभाव बढ़ा, उसका व्यक्तिगत आचरण और उसकी धार्मिक शिक्षाओं की गुणवत्ता का स्तर भी गिरने लगा।" (वही. पृ. 221)

"एक प्रताडित समाज सुधारक, जिसके पास मक्का में कोई सांसारिक सत्ता व अधिकार नहीं थे, मदीना में आकर वही एक प्रशासक, राजनेता, सेनापति, योद्धा, न्यायाधीश, विधि निर्माता, कबीलों का शासक, सांसारिक राजकुमार तथा आम लोगों का सम्राट, धर्माध्यक्ष और महाराजा हो गया। यहाँ उसने पूरी तरह से एक ऐसी नई हैसियत प्राप्त कर ली थी जिसके द्वारा उसने लोगों, परिवारों और यहाँ तक कि समस्त कबीलों के जीवन और मृत्यु का सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया। वह इस हैसियत को बिना किसी रोक टोक के पूरी आजादी के साथ प्रयोग करने में स्वतंत्र

था, और अक्सर सत्ता के प्रलोभनों के वशीभूत भी हो जाता था।'' (वही, पृ. 221-222)

''वह सहिष्णुता से धर्मान्धता की ओर बढ़ गया। वह शान्ति पुरुष, जिसने कभी धैर्य के साथ, विरोध को सहन किया था, वही अब तानाशाह और अत्याचारी हो गया जो अपने शत्रुओं से बदला लेने को तत्पर रहता था। उसने यहूदियों और ईसाईयों द्वारा उसे पैगम्बर न मानने की बात को कटुता के साथ याद किया और उनके साथ वैसा ही कटुता पूर्ण व्यवहार किया। वह मक्का वासियों द्वारा उसके साथ किए गए व्यवहार को भी न भूल सका और अपने साथियों को उनके शान्तिपूर्ण व्यापारिक कारवाओं को लूटने के लिए लगाया। उसने उन लोगों की हत्या करने के आदेश दिए, जिन्होंने उसका विरोध किया था, मखौल उड़ाया था। उसने अनेक (82) सैनिक अभियानों के लिए आदेश दिए और अन्त में इस्लाम के प्रसार के लिए गैर-मुसलमानों से युद्ध करने और उनकी सामूहिक हत्या करने की आज्ञा दी।'' (वही पृ. 222)

बाकर आगे लिखता है : ''मुहम्मद ने मक्का में एक बार कहा था कि अल्लाह' ने तुम्हें विरादरियों और कबीलों का रूप दिया ताकि तुम एक दूसरे को पहचान सको। (49.13)'' और यह उस अल्लाह के लक्षणों में से एक है। उसकी निशानियों में से आकाशों और धरती का सृजन और तुम्हारी भाषाओं और तुम्हारे रंगों की विविधिता भी है।'' (30:22, पृ.355)। मगर मदीना में अब अरबी भाषा, अल्लाह और फरिश्तों की भाषा हो गई। अब न्याय के दिन सभी पापी (गैर-ईमान वाले) काले-चेहरे वाले होंगे और जो ईमान वाले होंगे उनके चेहरे सफेद चमकेंगें। (3:106-107 पृ. 56) इसी तरह अब अरबवासियों को मानवजाति की श्रेष्ठ नस्ल और अरब को उत्तम राष्ट्र कहा गया है।'' (3:110 पृ. 56)

''मुहम्मद के जीवन के अन्तिम दस वर्षों में उसके अत्यन्त श्रद्धालुओं ने उसे सम्मान जनक पदवियां दीं जो कि उसे लगभग देवत्व प्रदान करने के समान हैं'' (गलब, पृ. 268)। ''यहाँ उससे जुड़ी प्रत्येक वस्तु या विषय एक विशेष सम्मान की बात समझी जाती थी।'' (वही, पृ. 222)

बाकर फिर लिखता है ''मक्का का उपदेशक और सचेतक, मदीना में आकर एक धर्माध्यक्ष और देवी, आप्त पुरुष हो गया। जहाँ उसने एक बार अपने निजी सन्देश और अन्य लोगों के पैगम्बरों और उनके पवित्र

ग्रंथों के बीच कोई भेद नहीं माना था, उसी ने अब कहा कि पिछले सभी 'इलहाम' अधूरे और त्रुटिपूर्ण थे और इस्लाम का जो सन्देश उसके माध्यम से दिया जा रहा है, केवल वही पूर्ण सत्य है, जो सभी धर्मों के ऊपर उठने योग्य है।" (48 : 28), (पृ. 223)

"उससे पहले के सभी पैगम्बर केवल उसके पूर्वगामी थे। उनमें से वही सबसे बड़ा और सबसे आखिरी था जिसको कि 'देवी' 'इलहाम' का उत्तरदायित्व सौंपा गया था। वही पैगम्बरों की आखिरी मोहर है (यानी वहाँ आखिरी पैगम्बर है)। उसके साथ ही पैगम्बरों के आने या उत्तराधिकार का सिलसिला समाप्त हो गया था तथा भविष्य वाणी की जुबान शान्त कर दी गई थी।"

"मक्काई सूराओं में अल्लाह निश्चय ही पूजनीय और उसके अलावा अन्य कोई नहीं है। केवल उसके नाम का ही यशोमान किया जाए। केवल उसी का आज्ञा पालन किया जाए। लेकिन मदीनाई सूराओं में एक नए धर्म के संस्थापक के रूप में और नए (मुस्लिम) समाज के नेता के रूप में मुहम्मद को महत्व दिया गया है। अल्लाह का रसूल-मुहम्मद उतना ही महत्त्वपूर्ण हो जाता है जितना कि 'इलहाम' जिसको लाने के लिए उसे ही चुना जाता है और लगभग उतना ही महत्त्वपूर्ण हो जाता है जितना कि अल्लाह जिससे कि 'इलहाम' (दैवी सन्देश) लाया जाता है। 'सीलों' और 'ताबीज़ों' में मुहम्मद और अल्लाह के नाम आपस में जुड़े हुए हैं।

"यहाँ मुहम्मद को सर्वशक्तिमान के समान स्थान देना प्रारम्भ हो जाता है और लगभग निश्चय रूप में कहा जाता है कि यह अल्लाह और उसका रसूल मुहम्मद है जिनके प्रति निष्ठा होना उचित है। एक हदीस में मुहम्मद स्वयं कहता है, जो मुझ में आस्था नहीं रखता है वह अल्लाह में आस्था नहीं रखता हैं। (काज़ी और ल्फिन पृ. 123) चूंकि अब मुहम्मद, अल्लाह के समान हैसियत व प्रतिष्ठा रखता है, उसका आज्ञा पालन उचित है। जैसा कि कुरान कहता है : 'जो मुहम्मद का आज्ञा पालन करता है, वह अल्लाह का आज्ञापालन करता है।' (4:80), (वही, पृ. 223)

अध्याय–8

विश्व में इस्लाम के बदलते चेहरे : क्यों?

आज इस्लाम विश्व के लगभग सभी देशों में फैल चुका है, चाहे उनकी संख्या एवं शक्ति में भले ही भारी अन्तर हो। इस्लाम का मुख्य कार्यक्रम है: **सारे विश्व में इस्लामी राज्य स्थापित करना।** जहाँ भी कोई मुसलमान जाता है वहाँ वह अपनी शक्ति के अनुसार इस्लाम के प्रचार प्रसार का भरसक प्रयत्न करता है। जैसे जिहाद के अनेक रूप और तरीके हैं वैसे ही इस्लाम के भी अनेक चेहरे हैं जैसाकि हम भारत में ही देखते आ रहे हैं कि पिछले 1300 वर्षों में इस्लाम ने कितने चेहरे बदले हैं और वे आज भी बदल रहे हैं। यह एक दूसरी बात है कि सत्तालोलप कांग्रेस सरकार मुसलमानों के अन्तिम उद्देश्य की अनदेखी कर रही है।

इस्लाम का एक मुख्य कार्यक्रम हैं: **तेजी से मुसलमानों की जनसंख्या बढ़ाना** और फिर संख्यानुसार नित नई-नई आर्थिक व राजनैतिक सुविधाऐं मांगना और अन्त में उस राज्य को इस्लामी राज्य बना लेना। यह नीति आज विश्व के सभी गैर मुस्लिम देशों में योजना पूर्वक चलाई जा रही है।

डा. पीटर हैमोंडस ने अपनी पुस्तक : 'स्लेवरी, टैरोरिज़्म एण्ड इस्लाम-दी हिस्टोरिकल रूट्स एण्ड कन्टेम्पोरेरी थ्रैट' में विस्तार से लिखा है जिसके कुछ अंश निम्नलिखित हैं–

"किसी भी देश में इस्लामीकरण का प्रारंभ तब होता है जब पर्याप्त मात्रा में मुस्लिम जनसंख्या होती है और वे इसके लिए उग्रता दिखाने की स्थिति में होते हैं। और जब राजनीतिक रूप से जागरूक और सहनशील समाज मुस्लिमों की कुछ धार्मिक बातों को मान लेते हैं तब उनकी कुछ और मांगे धीरे से आगे आ जाती है। ये किस तरह काम करते हैं। देखिए :

1. (<2%) : उस देश में जब मुस्लिम जनसंख्या 2 प्रतिशत या कम हो तो मुस्लिम समाज एक शांतिप्रिय समाज है जो किसी भी प्रकार से अन्य नागरिकों के लिए खतरा नहीं दिखाई देता है जैसा कि....

अमेरिका-0.6 प्रतिशत, आस्ट्रेलिया-1.5 प्रतिशत, कनाडा-1.9 प्रतिशत, चीन-1.8 प्रतिशत, इटली-1.5 प्रतिशत, नार्वे-1.8 प्रतिशत आदि

2. (2-5%) : जब ये जनसंख्या 2-5 प्रतिशत तक पहुंच जाती है तब धर्मातरण प्रारंभ होता है, जो अक्सर अन्य धर्म के अल्पसंख्यकों और जिलों में अलग-थलग पड़े लोगों से होता है। जैसा कि निम्नांकित है.... डेनमार्क-2 प्रतिशत, जर्मनी-3.7 प्रतिशत; ब्रिटेन-2.7 प्रतिशत, स्पेन-4 प्रतिशत, थाईलैंड-4.6 आदि।

3. (5-10%) : 5 प्रतिशत से ज्यादा संख्या (10% तक) होने पर ये अपनी जनसंख्या के अनुपात से ज्यादा मांगे रखना शुरू कर देते हैं। जैसे वे हलाल मांस की मांग करेंगे। एक तरह से जाब सिक्युरिटी हो गई मुस्लिमों की खाने की इंडस्ट्री मैं... सुपरमार्केटस पर हलाल मांस के अलग स्टाल लगाने का दबाव बनाया जाता है अन्यथा उनके बहिष्कार की धमकियां दी जाती हैं, जैसा कि निम्न देशों में हो रहा है.... फ्रांस-8 प्रतिशत, फिलिपिन्स-5 प्रतिशत; स्वीडन-5 प्रतिशत; स्विटजरलैंड-5.3 प्रतिशत, नीदरलैंड-5.5 प्रतिशत, त्रिनाद एन्ड टोबेको-5.8 प्रतिशत। और अब समय आता है जब वे सरकार से ऐसे कानून बनाने की बात करते हैं कि उनके ऊपर सिर्फ शरीयत लागू की जाये क्योंकि मुसलमानों का अंतिम लक्ष्य पूरे विश्व में शरीयत लागू करना है।

4. (>10%) : जब मुस्लिम जनसंख्या 10 प्रतिशत या ज्यादा हो जाती है तो अपनी बनाई हुई व बिगड़ी हुई परिस्थितियों के लिये आंदोलन करना शुरू करते हैं.... और यदि कोई गैर-मुसलमान इस्लाम के प्रति असम्मान जताते हैं तो ये धमकियां देना शुरू कर देते हैं और दंगा भड़काने की कोशिश करते हैं, जैसा कि एम्सटर्डम में हुआ जहां मुहम्मद साहब का कार्टून बनाने के बाद धमकियां दी गई, जैसे गुयाना : 10 प्रतिशत, भारत-13.4 प्रतिशत; इज्राइल-16 प्रतिशत; किनिया-10 प्रतिशत; रूस-15 प्रतिशत।

5. (>20%) : और जब जनसंख्या 20 प्रतिशत या उससे अधिक हो तो छोटी-छोटी बात पर दंगा करना.... जिहादी ग्रुप बनाना, हत्या करना, मंदिर और चर्च जला देना आम बात हो जाती है जैसा कि.... इथियोपिया-32.8 प्रतिशत;

6. (>40%) : जब मुसलमान 40 प्रतिशत या अधिक हो जाते हैं तो देश में कत्ले-आम शुरू हो जाता है, जैसा कि.... बोस्निया-40 प्रतिशत; चाड-53.1 प्रतिशत; लेबनान-37.7 प्रतिशत।

7. (>60%) : 60 प्रतिशत से ऊपर वाली जनसंख्या वाले देशों में गैर- मुस्लिमों को और अन्य मुस्लिम समुदाय जैसे पाकिस्तान में अहमदिया पर स्वयंभू तरीके से मुकदमें चलाकर उन्हें परेशान किया जाता है और एक तरह से उनकी सामूहिक हत्या आदि करके उनको खत्म किया जाता है और उसके लिए हथियार बनाया जाता है शरिया कानून को और जजिया कर जो कि काफिरों पर लगाया गया टैक्स है कि वे शांति से जी सके...जैसा निम्न देशों में हो रहा है.... अलबानिया-70 प्रतिशत; मलेशिया-60.4 प्रतिशत, कतर-77.5 प्रतिशत, सूडान-70 प्रतिशत,

8. (>80%) : 80 प्रतिशत के बाद हिंसक जिहाद और हत्याएं रोज़मर्रा का काम हो जाता है... यानि इस्लामिक राज्य द्वारा प्रायोजित सामूहिक हत्याएं, क्योंकि काफिरों को खत्म करना इन देशों की मूल नीति होती है

9. (<100%) : 100 प्रतिशत से कम मुस्लिम जनसंख्या में जैसा निम्न देशों में हो रहा है... इजिप्ट-90 प्रतिशत, गाजा-87.7 प्रतिशत, इंडोनेशिया-86.1 प्रतिशत, ईरान-98 प्रतिशत, इराक-97 प्रतिशत, जोर्डन-92 प्रतिशत, पाकिस्तान-97 प्रतिशत, फिलिस्तिन-99 प्रतिशत, सीरिया-90 प्रतिशत, तजाकिस्तान-90 प्रतिशत, टर्की-99.8 प्रतिशत, संयुक्त अरब अमीरात-96 प्रतिशत।

10. (100%) : जहां संपूर्ण लक्ष्य प्राप्त कर लिया जाता है वहां दारुल-ए-इस्लाम के रूप में शांति का प्रवेश होता है। और वहां पूरी तरह से शांति और शांति ही होनी चाहिए क्योंकि हर व्यक्ति मुसलमान है। विद्यालयों की जगह सिर्फ मदरसे होते हैं और कुरान ही सिर्फ साहित्य होता है.... चारों ओर इस्लाम का बोलबाला होता है। सिर्फ कुरान सुनाई देती है, पर दुर्भाग्य से शांति कभी नहीं आती जैसा कि इन देशों में हुआ है... जिनमें बिना किसी अपवाद के सबसे कट्टर मुसलमान रहते हैं और जो अपनी खून की प्यास को थोड़े कम कट्टर मुसलमानों के खून से बुझाते हैं... जिसके अनेक कारण गिनाये जा सकते हैं।

ये देश है : अफ़गानिस्तान-100 प्रतिशत, सऊदी अरेबिया-100 प्रतिशत, सोमालिया-100 प्रतिशत, यमन-100 प्रतिशत।

मुहम्मद साहब ने नौ साल की उम्र से पहले ही अरब लोगों की जिंदगी की हकीकत को जाना। यह मैं था जो अपने भाई के विरुद्ध था, मैं और मेरा भाई हमारे पिता के विरुद्ध थे। मेरा परिवार मेरे चाचा या मामा के परिवार के विरुद्ध था, फिर हमारा कुनबा दूसरे-कुनबे के खिलाफ था, हमारी पूरी जाति दुनिया के विरुद्ध थी, और हम सब काफ़िरों के विरुद्ध थे।

यह समझना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है कि जिन देशों में मुस्लिम जनसंख्या 100 प्रतिशत से ठीक ठाक कम होती है जैसे फ्रांस जहां अल्पसंख्यक मुस्लिम जनसंख्या अपनी ही बनाई गई बस्तियों में रहती है, जहाँ वे शरियत कानून के अनुसार रहते हैं। जहां पुलिस प्रवेश भी नहीं करती... जहां न पुलिस, न न्यायालय, न विद्यालय और न ही गैर मुस्लिमों के लिए कोई धार्मिक सुविधा होती है... ऐसे में मुस्लिम समाज अन्य वर्गों के साथ मिल भी नहीं सकते... बच्चे मदरसों में जाते हैं और केवल कुरान सीखते हैं जिसमें वह जान पाते हैं कि काफिर की सजा केवल मौत है...।

आज 1.5 अरब मुसलमान विश्व की जनसंख्या का 22 प्रतिशत है. .. पर उनकी जन्म दर ईसाई, हिन्दू, बौद्ध, यहूदी और अन्य सभी धर्मों को मानने वालों से अधिक है... इस सदी के अंत तक मुसलमान विश्व की जनसंख्या के 50 प्रतिशत से ज्यादा होंगे.... सोचो.... और सोचो.. ...फिर क्या होगा.....

ऊपर पीटर हैमोंडस ने जो भी इस्लाम के विभिन्न चेहरे गिनाए हैं वे सभी भारत के विभिन्न भागों में 636 एडी से लेकर 1947 तक, और भारत विभाजन के बाद भी चले आ रहे हैं। भारतीय मुसलमान पाकिस्तान जाने के बजाय यहीं बसे रहे और 1947 से ही केन्द्र व राज्य सरकारों से शान्तिपूर्ण जिहाद द्वारा सभी प्रकार के आर्थिक एवं राजनैतिक लाभ उठाते रहे हैं, तो दूसरी और वे आतंकवादी जिहाद द्वारा भारत को अस्थिर कर इस्लामी राज्य बनाना चाहते हैं। इसका प्रमाण मुस्लिम बहुल कश्मीर से 5 लाख

हिन्दुओं को निकाल देना तथा बंगला देश में लाखो हिन्दुओं की हत्या और वहाँ से लाखों मुसलमानों की अवैध घुसपैठ द्वारा पश्चिमी, बंगाल, बिहार एवं अन्य क्षेत्रों को तेजी से मुस्लिम-बहुल बनाया जा रहा है तथा पिछले 15 वर्षों में फिदायीन हमलों एवं बम विस्फोटों द्वारा सैकड़ों भारतीयों की हत्या करके असुरक्षा का भावना बढ़ाई जा रही है। (तालिका 3) पीड़ा की बात तो यह है कि जिस प्रान्तीय व केन्द्रीय सरकारों को नागरिकों ने अपने जान माल की सुरक्षा के लिए चुना वे ही सरकारें मुस्लिम वोट बैंक की राजनीति के द्वारा निर्दोष नागरिकों की हत्या की अनदेखी कर रही हैं। **मुसलमानों का अजेंडा साफ है कि वे शेष भारत को भी इस्लामी राज्य में परिवर्तित करना चाहते हैं।**

अतः अब राष्ट्र भक्तों का उत्तरदायित्व है कि वे इस आतंकवादी इस्लामी चेहरे के उद्देश्यों को समझें और डटकर विरोध कर इस इस्लामी आतंकवाद को सदैव के लिए समाप्त कर दें।

आशा है पाठकों को पीछे दिए कुरान के आदेशों और इस्लाम के विद्वानों के विचारों से स्पष्ट हो गया होगा कि शान्तिपूर्ण इस्लाम ने आंतकवादी इस्लाम तक पहुंचने की यात्रा भले ही चाहे दो, चार या छः चरणों में पूरी की हो परन्तु अन्त में सबने तलवार की आयत (9 : 5) जैसी आंतकवादी आयतों को ही अन्तिम और प्रामाणिक सन्देश माना है। इन आयतों का एक मात्र मुख्य सन्देश विश्व के अन्य सभी धर्मों जैसे ईसाइयत, यहूदी मत, हिन्दू एवं बौद्ध धर्म, नास्तिक मत आदि को समाप्त करके उनकी जगह एक मात्र 'सच्चे धर्म' इस्लाम को स्थापित करना है। जैसाकि पहले दी गई आयतों (2:193; 3:19 : 8 : 39, 9 : 33 आदि) से सुस्पष्ट है।

यदि यही स्थिति रही तो आंतकवादी इस्लामी जिहाद अगले दो चार सालों में समाप्त होने वाला नहीं है बल्कि इस्लामी धर्म ग्रंथों के अनुसार तो यह कियामत यानी सृष्टि के अन्त तक चलता रहेगा जब तक कि सारा विश्व इस्लामी झंडे तले न आजावे। इस कथन, की सच्चाई को सभी गैर-इस्लामी राज्यों, विशेषकर 11 सितम्बर 2001 को अमरीका में इस्लामी आतंकवादी घटी घटना के बाद से अच्छी प्रकार समझ लिया

है। 'यू एस नेशनल काउंटर-टैरोरिज़्म सेन्टर पब्लीकेशन-ए क्रोनोलोजी आफ़ इन्टरनेशनल टैरोरिज़्म स्टेट्स' के अनुसार **"भारत ने सबसे अधिक आंतकवादी हमलों को झेला है"**' (हिन्दू वॉइस अगस्त 2011, पृष्ठ 28)। यू.पी.ए. शासन काल (मई 2004 से सितम्बर 2011 तक) के 89 महीनों में 90 से अधिक/बम विस्फोट आदि हुए हैं जिनके फलस्वरूप 971 लोग मारे गए और 2721 घायल हुए हैं यानी प्रति दो दिन में तीन लोग मारे गए या घायल हुए हैं (तालिका 3)।

तालिका—3 भारत में यू.पी.ए. शासन काल (2004-2011) में जिहादी आतंकवादी हमलों का कालानुक्रम

17 सितम्बर 2011	बम विस्फोट, जय अस्पताल आगरा, 7 घायल।
7 सितम्बर 2011	बम विस्फोट, दिल्ली हाईकोर्ट, 15 की मौत 90 घायल।
13 जुलाई 2011	तीन बम विस्फोट, मुम्बई, 21 की मौत, 100 से अधिक घायल।
25 मई 2011	बम विस्फोट, दिल्ली हाई कोर्ट कैंटीन, कोई नहीं मरा।
7 दिसम्बर 2010	बम विस्फोट, गंगातट, वाराणसी 1 की मौत, 100 घायल।
सितम्बर 2010	बम विस्फोट, जामा मस्जिद, दिल्ली, कोई घायल नहीं।
13 फरवरी 2010	बम विस्फोट, जर्मन बेकरी, पूना शहर, 13 की मौत, 50 से अधिक घायल।
6 अप्रैल 2009	आसाम में चार बम विस्फोट, 7 की मौत, 60 से अधिक घायल।
26-29 नवम्बर 2008	10 लोगों द्वारा तीन जगह, तीन दिन तक, गोलियों से फाइरिंग, बम्बई, 200 मारे गए।

30 अक्टूबर 2008	आसाम में 13 बम विस्फोट, 87 की मौत, 470 से अधिक घायल।
27 सितम्बर 2008	महरौली के फूल बाज़ार में बम विस्फोट, 3 की मौत, 21 घायल।
13 सितम्बर 2008	दिल्ली के पांच इलाकों में सीरियल बम विस्फोट, 25 की मौत, 100 घायल।
26 जुलाई 2008	अहमदाबाद में 17 जगहों पर 22 सीरियल विस्फोट, 45 की मौत, 150 से अधिक घायल।
25 जुलाई 2008	बंगलौर में 7 लगातार बम विस्फोट, 2 की मौत, 20 से अधिक घायल।
13 मई 2008	जयपुर में बम विस्फोटों से 63 की मौत, 150 घायल।
23 नवम्बर 2007	यू.पी. के तीन शहरों में सीरियल बम विस्फोट, 13 की मौत, 40 घायल।
25 अगस्त 2007	हैदराबाद में दो जगह बम विस्फोटों से 43 की मौत, 70 घायल।
26 मई 2007	गुहाटी में बम विस्फोट, 6 की मौत, 20 घायल।
18 मई 2007	हैदराबाद में मक्का मस्जिद के पास, 2 बम विस्फोट, 12 की मौत, 15 से ज्यादा घायल।
19 फरवरी 2007	समझौता एक्सप्रैस पानीपत में चार बम विस्फोट, 68 की मौत, दर्जनों घायल।
8 सितम्बर 2006	मालेगाँव, महाराष्ट्र में, बम विस्फोट से 38 की मौत, 100 से अधिक घायल।
11 जुलाई 2006	बम्बई में, 11 मिनट में 7 बम विस्फोट, 186 की मौत, 800 घायल।
14 अप्रेल 2006	जामा मस्जिद, दो बम विस्फोट, 14 घायल।

7 मार्च 2006	वाराणसी में हनुमान मंदिर व रेलवे स्टेशन में तीन बम विस्फोटों से 28 की मौत, 62 घायल।
28 अक्टूबर 2005	नई दिल्ली के सरोजनी नगर, पहाड़ गंज और गोविन्दपुरी में दीपावली के मौके पर, 59 की मौत, 100 घायल।
22 मई 2005	दो सिनेमाघरों में बम विस्फोट, एक की मौत, 60 घायल।
28 जुलाई 2005	श्रमजीवी एक्सप्रेस ट्रेन में बम विस्फोट, 13 की मौत, 50 घायल।
5 जुलाई 2005	राम जन्म भूमि अयोध्या पर आतंकवादी हमला।
25 अगस्त 2004	मुम्बई बम विस्फोट में 6 की मौत।
15 अगस्त 2004	आसाम में बम विस्फोट, 16 की मौत, अधिकांश स्कूली बच्चे।

स्रोत–उदय इंडिया, 1 अक्टूबर, 2011, दिल्ली : कम से कम 90 बम विस्फोट या हमले हुए, 971 लोग मरे और 2721 घायल हुए, यानी 2607 दिनों में 3692 लोग घायल या मृत हुए।

डॉ के. एस.लाल–"सूफ़ियों ने अधिकांशतः शान्तिपूर्ण मिशनरियों की भांति कार्य किया लेकिन यदि उन्होंने कहीं पाया कि कुछ उचित उद्देश्य (इस्लाम प्रसार) के लिए सैनिक कार्यवाही की जरूरत है, तो उन्होंने (गैर-मुस्लिमों से) युद्ध करने हिचक नहीं की। संक्षेप में, सूफी मुशेखों ने आक्रामक और शान्तिपूर्ण दोनों तरीकों से हिन्दुओं का धर्मान्तरण किया, उनके पूजास्थलों पर कब्जा किया और उन्हें ख़ानकाहों और मस्जिदों में बदल दिया, ताकि पूर्वी बंगाल को विशेषकर एक मुस्लिम भूमि बनाई जा सके। मध्यकालीन इतिहासकारों ने बंगाल में बलात् धर्मान्तरण की कहानियों को बड़े जोश के साथ वर्णन किया है।" (*इंडियन मुस्लिम्स हू आर दे ?, पृ. 47*)

अध्याय–9

समाधान

इस्लामी आंतकवाद और जिहाद की समस्या केवल भारत के ही विरूद्ध नहीं बल्कि विश्व के सभी गैर-इस्लामी राज्यों के विरूद्ध है। अतः इस अन्तर्राष्ट्रीय समस्या का हल भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ही खोजना अधिक उपयोगी होगा जिसमें गैर-मुस्लिम लोगों और उनकी सरकारों का अपने-अपने स्तर और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर सबका सहयोग अनिवार्य होगा। पिछले कुछ वर्षों में विश्वस्तर पर अमरीका, ब्रिटेन, योरोपीय देशों, जापान, चीन आदि देशों ने अकेले और मिलकर भी अनेक प्रभावी रक्षात्मक कदम उठाए हैं। इस कार्य के लिए भारत भी अन्य समस्त देशों से सहयोग तो मांग रहा है, मगर स्वयं जितनी बड़ी समास्या है उतनी दृढ़ता एवं संकल्प शक्ति के साथ संवैधानिक और सुरक्षात्मक कदम नहीं उठा रहा है। सम्भवतः मुस्लिम वोट खोने एवं उनकी सरकारें गिरने के भय से। मगर इस्लामी जिहाद एवं आतंकवाद एक राष्ट्रीय समस्या है। इसमें प्रत्येक पार्टी एवं प्रत्येक नागरिक को पार्टी स्तर से ऊपर उठकर राष्ट्र हित में काम करना चाहिए जैसाकि अमरीका की केन्द्र और राज्य सरकारों ने किया है। इस्लामी आतंकवाद तो राष्ट्रीय सुरक्षा को चुनौती है। अतः राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए सबको इस के विरूद्ध दृढ़ता से जुट जाना चाहिए। इस संदर्भ में भारत के विषय में कुछ सुझाव निम्नलिखित हैं :

(1) सबसे पहले तो केन्द्र सरकार और सभी राज्य सरकारें इस जिहादी आतंकवाद को मिटाने के लिए सच्चे मन व दृढ़ता से संकल्प लें, तथा आवश्यक प्रशासनिक व संवैधानिक निर्णय लें और उनको पालन करने में सभी राजनैतिक दल पूर्ण सहयोग दें।

(2) कश्मीर में धारा 370 समाप्त करें;

(3) बंगला देशी मुस्लिम घुसपैठियों को भारत से निकालें;

(4) जिन पाकिस्तानी और बंगला देशी मुसलमानों की वीसा अवधि समाप्त हो गई है उन्हें पकड़ कर वापिस उनके देश भेजें। पोटा कानून फिर से लागू किया जाए;

(5) समान आचार संहिता बिल पास करके लागू किया जाए।

(6) भारत एक धर्म निरपेक्ष देश है। अतः किसी को धर्म के आधार पर धार्मिक यात्रा जैसे हज्ज, शिक्षा के लिए वजीफे और अन्य आर्थिक व वैधानिक सुविधाऐं नहीं दी जाऐं।

(7) सब नागरिकों के लिए समान कानून हों।

(8) हिन्दुओं का कानूनन धर्मान्तरण बन्द हो।

(9) अल्पसंख्यक मुस्लिमों के साथ वैसा ही कानूनन व्यवहार किया जाए जैसा कि इस्लामी देशों में अल्पसंख्यक गैर-मुसलमानों, यहूदियों, ईसाइयों, हिन्दुओं आदि के प्रति होता है। इसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों से मदद ली जाए।

(10) भारत में मुसलमान (13.5%) किसी भी दृष्टि से अल्पसंख्यक नहीं है। अतः अल्पसंख्यकों के नाम पर उन्हें कोई सुविधा न दी जाए।

(11) भारत को हिन्दू राष्ट्र घोषित, और हिन्दू राज्य स्थापित किया जाए।

माधवराव सदाशिव राव गोलवलकर 'गुरु जी'—"क्या (पाकिस्तान बनने के बाद) जो मुसलमान भारत में रह गए हैं, उनकी मानसिकता तनिक भी बदल गई है ? क्या उनकी पुरानी शत्रुता और हत्या करने की मनस्थिति जिसके फलस्वरूप 1946-47 में व्यापक मात्रा में दंगे, लूट, आगजनी, बलात्कार और विभिन्न प्रकार की लम्पटलाएं अभूतपूर्व स्तर पर हुईं, अब समाप्त हो गई ? ऐसा भ्रम से भी विश्वास कर लेना कि पाकिस्तान बनने के बाद वे रातोंरात राष्ट्र भक्त हो गए हैं, आत्मघाती होगा। इसके विपरीत पाकिस्तान बन जाने के कारण मुस्लिम खतरा सैंकड़ों गुना और बढ़ गया है क्योंकि पाकिस्तान हमारे देश पर समस्त भावी आक्रामक कार्यवाहियों के लिए एक स्थायी आधार बन गया है।" (*बंच ऑफ थॉट्स, पृ. 178*)

अध्याय–10

मुख्य सारांश

इस पुस्तक में इस बात पर विचार किया गया है कि क्या इस्लाम में गैर-मुसलमानों के प्रति प्रेम, शान्ति, समानता और भाई चारे का उपदेश दिया गया है या उनको किसी भी प्रकार से यहाँ तक कि, सशस्त्र युद्ध द्वारा इस्लाम में धर्मान्तिरित करने का आदेश दिया गया है ? विशेषकर जब कि सारी कुरान का रचनाकार एक मात्र अल्लाह ही है ?

इन प्रश्नों का उत्तर ढूंढ़ने के लिए यहाँ हमने इस्लाम के धर्म ग्रंथों और पैगम्बर मुहम्मद की जीवनी का अध्ययन करके सूक्ष्म विवेचन किया है। अन्त में हमारा निष्कर्ष यह है:–

(1) कुरान के 114 सूराओं में से लगभग नब्बे (तीन चौथाई) सूरा पैगम्बर मुहम्मद पर, रुक-रुक कर, 13 वर्षों (610 से जून 622) तक मक्का में अवतरित हुए और बाकी चौबीस सूरा (सितम्बर 622 से जून 632) तक मदीना में अवतरित हुए। अतः इस्लाम धर्म का पूरा सन्देश एक साथ इस्लाम की स्थापना से पहले नहीं बल्कि विभिन्न कालों में थोड़ा-थोड़ा करके उतरा जबकि समस्त कुरान का रचनाकार वही एक अल्लाह ही है।

(2) मक्का और मदीना में, पैगम्बर मुहम्मद पर, अवतरित सभी 6226 आयतों की विषय, सामग्री, भाषा, शैली उनकी लम्बाई एवं सन्देशों में न केवल व्यापाक अन्तर है बल्कि कहीं कहीं पारस्परिक विरोध भी हैं। कुरान में इस व्यापक भिन्नता के कारण इस्लाम के दो चेहरे साफ़ दिखाई पड़ते हैं जिन्हें कि विद्वानों ने मक्काई इस्लाम और मदीनाई इस्लाम भी कहा है।

(3) प्रारम्भ में पैगम्बर मुहम्मद के 13 वर्षों तक, अथक परिश्रम करने के बाद भी, मक्का में लगभग एक सौ लोगों ने इस्लाम में अपनी आस्था प्रगट की थी।

(4) हालांकि कुछ मक्काई आयतों में गैर-मुसलमानों के विषय में जिहाद शब्द आया है, मगर यहाँ इसका अर्थ 'अपने लिए प्रयास' या 'कोशिश करना' लिया गया है। साथ ही मुसलमानों को अल्लाह और कुरान में अटूट आस्था रखने और गैर-मुसलमानों के प्रति शान्ति, सब्र सहयोग एवं सहिष्णुता अपनाने पर बल दिया गया है और उनको इस्लाम में धर्मान्तरित करने के लिए किसी प्रकार के बल प्रयोग या सशस्त्र युद्ध की अनुमति नहीं दी गई है।

(5) मक्का प्रवास-काल में पैगम्बर मुहम्मद का गैर-मुसलमानों पैगनों, ईसाइयों, व यहूदियों के प्रति व्यवहार प्रेम शान्ति, सहिष्णुता व भाई चारे का रहा। इसीलिए मक्काई काल में इस्लाम के शान्तिपूर्ण रहने के कारण मुसलमान समस्त इस्लाम को ही शन्ति व प्रेम का मज़हब होने का दावा करते हैं।

(6) जब पैगम्बर मुहम्मद ने मक्का की 'काबा मस्जिद' में रखी अरेबिया के विभिन्न मतों एवं सम्प्रदायों के अनेक (360) देवी देवताओं की, मूर्तियों और मूर्त्तिपूजा की निन्दा तथा आलोचना की तो मस्जिद के प्रशासक-कुरेशों, जो कि मुहम्मद के चचेरे भाई ही थे, को यह ईशनिन्दा बहुत बुरी लगी जिसका उन्होंने विरोध किया। साथ ही उन्होंने मुहम्मद को अपना पैगम्बर मानने से भी इन्कार कर दिया। सन् 619 एडी में मुहम्मद की पत्नी खदीजा और उसके पालने वाले चाचा अबू तालिब जो सदा मुहम्मद का समर्थन करते थे, के निधन के कारण मक्का में पैगम्बर मुहम्मद की स्थिति और भी कमज़ोर हो गई। वास्तव में वे मक्का में अरब राष्ट्र बनाना चाहते थे।

(7) तभी मुहम्मद के सौभाग्य से मदीना के कुछ मुसलमानों ने मुहम्मद को मदीना आने और यहाँ इस्लाम का प्रचार करने का निमंत्रण दिया। इसके लिए उन्होंने सब प्रकार की सहायता और उनकी सुरक्षा करने का वायदा भी किया। अतः पैगम्बर मुहम्मद अपने अधिकांश साथियों सहित शुक्रवार 11 सितम्बर 622 को मक्का से मदीना पहुंच गए।

(8) मदीना आकार पैगम्बर ने मुसलमानों का एकीकरण और उनका सैनिकीकरण करना शुरू कर दिया। इसके लिए उन्होंने (1) अरबिया के सभी मुसलमानों को मदीना में आकर बसने का आदेश दिया, (2) मुसलमानों को गैर-मुसलमानों के प्रति जिहाद करना (सशस्त्र युद्ध करना) एक अनिवार्य धार्मिक कर्त्तव्य घोषित कर दिया। (3) उन्होंने हर मुसलमान को ज़कात (दान) देना आवश्यक कर दिया; (4) रमाजान के पवित्र महीनों जिनमें कि अरेबिया में परम्परा से लूटमार वर्जित थी, पर पैगम्बर मुहम्मद ने इस काल मे भी, इस्लाम के हित में, लूटमार को उचित ठहराया। (5) उन्होंने कारवाओं के लूट-मार और गैर-मुसलमानों पर विजय पाने पर उनकी सम्पत्ति-स्त्री बच्चों आदि के 80 प्रतिशत को युद्ध करने वाले सैनिकों को देने का वायदा किया और शेष 20 प्रतिशत अपने लिए रखा, (6) तथा जिहाद में युद्ध करते हुए मारे जाने वालों को फौरन ज़न्नत पाने का आश्वासन दिया। (7) साथ ही मदीना को एक छोटा-सा स्वतंत्र इस्लामी राज्य घोषित कर दिया। (8) इस सैनिकीकरण के फलस्वरूप पैगम्बर मुहम्मद ने मदीना काल में कारवाओं को लूटने और छोटे-छोटे कबीलों पर आक्रमण करने के 82 अभियान किए जिनमें से 27 का स्वयं नेतृत्व किया।

(9) उन्होंने मार्च 630 में, अपने दस हजार सैनिकों की सहायता से मक्का पर कब्जा कर लिया तथा अक्टूबर 630 में अरेबिया की सीमा पर टुबुक के युद्ध के लिए पैगम्बर मुहम्मद ने तीस हज़ार सैनिकों के साथ मुकाबला किया। मगर युद्ध नहीं हुआ। इस समय तक लगभग सारा अरेबिया पैगम्बर मुहम्मद के कब्जे में हो गया जिसके वे शासनाध्यक्ष और इस्लाम के धर्माध्यक्ष भी हो गए। अब उनका आदेश ही कानून था। यह मदीनाई इस्लाम का दूसरा चेहरा है।

(10) इस्लाम की तरह पैगम्बर मुहम्मद के भी दो चेहरें हैं। मक्का में जब वे संख्या व शक्तिबल में कमज़ोर थे तो वे सबके सामने कहा करते थें 'कि मैं तो आप लोगों की तरह ही केवल एक मनुष्य हूँ,' 'कोई फरिश्ता नहीं हूँ'। परन्तु मक्का विजय के वाद, शक्तिशाली होने पर पैगम्बर मुहम्मद एक सर्व सत्तात्मक डिक्टेटर और कठोर प्रशासक हो गए।

(11) अब यहाँ वे अल्लाह के बराबर के हो गए। कुरान में 'अल्लाह भी कहता है कि "**पैगम्बर मुहम्मद का आज्ञा पालन अल्लाह के आज्ञा पालन के समान है**" (4:80)। यहाँ तक कि मुसलमान होने के लिए 'केवल अल्लाह में विश्वास प्रगट करना ही परियाप्त नहीं है बल्कि पैगम्बर मुहम्मद को अल्लाह का रसूल भी मानना यानी दोनों में बराबर ईमान लाना आवश्यक है"। पहले कहा कि मैं तो केवल अरबों का रसूल हूँ परन्तु मदीना में कहा कि अल्लाह ने मुझे सारी दुनियां का रसूल बनाकर भेजा हैं जिसका उद्देश्य विश्व के अन्य सभी धर्मों को समाप्त करना है।

(12) कुरान के आखिरी सूरा 9 आयत (5) जिसे '**तलवार की आयत**' भी कहते हैं, में पैगम्बर मुहम्मद कहते हैं:—

"जब हराम (प्रतिष्ठित) महीने बीत जाऐं तो मुशरिकों (मूर्त्ति पूजकों) को जहाँ पाओ, कत्ल करो, उन्हें पकड़ो और उन्हें घेरो और हर घात की जगह उनकी ताक में बैठो। यदि वे तौबा कर लें और नमाज़ क़ायम करें और ज़कात दें (यानी मुसलमान बन जाए-लेखक पालीवाल) तो उनका मार्ग छोड़ दें। (9.5 पृष्ठ 157) अतः सार की बात यह है कि जहाँ कहीं भी मुसलमान संख्या बल व शक्ति में कमजोर होते हैं तो वे इस्लाम को प्रेम-शान्ति और भाई चारे का मज़हव कहते हैं तथा इसके समर्थन में मक्काई कुरान की उदारवादी और निरस्त आयतें पेश करते हैं और मक्काई इस्लाम की वकालत करते हैं और जब वे शक्तिशाली हो जाते हैं तो मदीनाई कुरान की 'तलवार की आयत' (9.5) जैसी सशस्त्र युद्ध वाली जिहादी आयतें प्रस्तुत करते हैं" और मदीनाई इस्लाम को ही सच्चा इस्लाम कहते हैं जो कि गैर-मुसलमानों को इस्लाम स्वीकारने या उनके विरूद्ध सशस्त्र युद्ध (जिहाद) को प्राथमिकता देते हैं जैसाकि पाकिस्तान और बंगला देश में 1947 से हिन्दुओं के साथ होता आ रहा है। भारत, अमरीका और यूरोपीय देशों में जो फिदायीन हमले, बम विस्फोट और आंतकवादी आक्रमण हो रहें हैं, वे सब इसी मदीनाई इस्लाम का आधुनिक रूप है। हालांकि कुरान में आत्महत्या एक पाप है परन्तु इस्लाम आधुनिक फिदायीन हमलों का समर्थन करता है।

पिछले एक वर्ष से जो खाड़ी के इस्लामी देशों में जन विद्रोह चल रहा है उसका उद्देश्य भी वहाँ कट्टरवादी इस्लामी राज्यों की स्थापना की ओर एक सक्रिय कदम है।

(12) गैर-मुसलमानों के संदर्भ में, जिहाद, इस्लाम और पैगम्बर मुहाम्मद के उनकी शक्ति के अनुसार मुख्यतः दो चेहरे हैं जिनके अनुसार वे उनसे व्यवहार करते हैं। मगर किसी भी गैर-इस्लामी देश में इस्लाम के भले ही दो, तीन या अनेक चेहरे हों परन्तु ऐसे देश में इस्लाम का अन्तिम उद्देश्य मुसलमानों को साम-दान-दण्ड-भेद से इस कमजोर स्थिति से मज़बूत स्थिति में लाकर उस देश में इस्लामी राज्य स्थापित करना है। आज इस्लाम ने विश्वभर के गैर-इस्लामी देशों में जिस जिहादी आतंकवाद का रूप ले रखा है वह ही असल में इस्लाम का अन्तिम चेहरा है जैसाकि कुरान की 'तलवार की आयत' (9.5) में अल्लाह द्वारा आदेशित हैं। इसका उद्देश्य सारे विश्व में अरब सांस्कृतिक साम्राज्य स्थापित करना है जैसा कि इस्लाम के विद्वान अनवर शेख ने अपनी पुस्तक 'इस्लामः एक अरब साम्राज्यवाद' में सिद्ध किया है।

(13) पुस्तक के अन्त में, इस अरबी साम्राज्यवाद की समस्या से निपटने के कुछ उपाय सुझाए गए हैं।

डॉ के. एस.लाल–"सूफ़ियों और मौलवियों ने मुस्लिम शासकों के धर्मान्तरण प्रयासों में खुलकर सहयोग दिया। मुहम्मद बिन तुग़लक (1326-1351) के समय से लेकर अकबर (1556-1605) तक बंगाल ने विद्रोहियों, शरणार्थियों, सूफ़ी मशेख, असंतुष्ट नवाबों और उत्तर भारत के साहसी युवकों को आकर्षित किया। आक्रामक प्रकार के सूफ़ी मशखों ने बंगाल की भूमि को हिन्दुओं के धर्मान्तरण के लिए उपजाऊ माना और मुसलमानों की संख्या बढ़ाने के लिए उन्होंने कठोर परिश्रम किया।" (*इंडियन मुस्लिम* हू *आर दे ?, पृ. 58*)

संदर्भ

Ali, Muhammad (1936) *Religion of Islam*, The Ahmediya Anjuman ishaat-Islam.

Ali, Syed Amer (1967) *The Spirit of Islam*, Univ, Paper Backs, London.

Ali, A. Yusuf (2000) *The Meanings of the Illustrious Qur'an*, Kitab Bhawan, Delhi.

Arnold, T.W. (1995) *The Preaching of Islam*, L.P. Pub. Delhi.

Azad, M.A.K. (1960) *The Tarjuman Al-Quran*, 3 Vols. Taj Publishers Bombay.

Baig, M.R. (1987) *Muslim Dilemma in India*. M.R.S.A.S Mandal, Bombay.

Bailey, Richard P. (2005); *Jihad Judggernaut*, Wordsmith, New Delhi.

Brills Encyclopedia (2005) in *Jihad Juggernaut*, Wordsmith, New Delhi.

Burke, Jason (2004) *Al-Qaeda-The True Story of Radical Islam*, Penguin Books, New Delhi.

Caetani, Leone (1905) *Annali dell Islam*, Hoeple, Milan.

Dashti, Ali (1994) *Twenty Three Years : A Study of the Prophetic Career of Muhammad*, Mazda Pub. California.

Engineer, A. A and M. Shakir (eds.) *Communalism in India*, Ajanta Pub.

Gabriel, M. A. (2002) *Islam and Terrorism*, Charisma House, Florida.

Glubb, J.B. (1979) *The Life and Times of Muhammad*, Hodder and Stroughton, London.

Hammond. Peter *Slaverry, Terrorism and Islam* : The Historical Roots and Contemporary Threat.

Hitti, P. K. (1951) *History of the Arabs*, Mac–Millan, London.

Hughes, T. P. (1885) *Dictionary of Islam*, Repted. by Rupa and Co. Delhi, 2003.

Hurgrone, S. (1916) *Muhammadanism*, New York.

Ibn Abidin (1958) in More, S. Islam.

Ibn Warraq (1995) *Why I am NOT a Muslim* ? Prometheus, Amherst, New York.

Imam Bukhari (1984) *Sahih al-Bukhari*, 9 vols. Kitab Bhawan, Delhi.

Imam Muslim (2000) *Sahih Muslim*, 4 Vols. Kitab Bhawan, New Delhi.

Jalaluddin Suyuti, *Itqan* in T.P. Hughes, Dictionary of Islam, Rupa and Co. Delhi.

Jansen, G. H., (1979) *Militant Islam*, Harper & Row, New York.

Kazi, A. K. and Flynn J. G. (1984) *Muslim Sects and Divisions*, Routledge and Kegan Paul, London.

Koettle *Muhammad and Muhammadanism*.

Laffin, John (1988) *Holy War Islam Fights*. Grafton Books, London,

Levonian L. (1958) *Moslem Mentality*.

Lokhandwala S. K. (1985) in More S. Islam.

Malik S. K. (1986) The *Quranic Concept of War*, Himalayan Books, New Delhi.

M aududi M. A. A. (1999) *Towards Understanding the Quran*, 6 Vols. MMI, Delhi.

Mirza, Syed Kamran (2005) *An Exegesis on Jihad in Islam, in Jihad Juggernaut*, Wordsmith, New Delhi.

More, S. (2004) *Islam—The Maker of Muslim Mind*, Rajhans Prakashan, Pune.

Muir, W, (2002) *The Life of Mahomet*, Voice of India, New Delhi.

Nolkode, T. (1860) *History of the Quran*, Gottingen Univ. Press.

Paliwal, K. V. (2005) *Islamism and Genocide of Minorities in Bangladesh*. Hindu Writers Forum, Delhi.

Qutb Sayyid (2005) *Milestones*, Islamic Book Service, New Delhi.

Rodewell J. M. (1915) *The Koran* Dent, London.

Rodinson, Maxime, (1983) *Mohammad*, Penguin Books.

Schimmel A. (1975) *Mystical Dimensions of Islam*, North Carolina Univ. Press, Chapal Hill.

Sell, Cannon (1923) *The Historical Development of the Quran*, repted Diniyat Pub Delhi (2000).

Siddiqi, N. ***Muhammad*** *: The Benefactor of Humanity*, MMI. Delhi.

Wahiduddin (1986) *The Prophet of Revolution*, Islamic Centre Delhi,

Walker, Benjamin (2004) *Foundations of Islam-The Making of a World Faith*, Rupa and Co., Delhi.

Watt. W. Montgomery, (1970) *Bell's Introduction to the Quran*, Edin. Univ. Press.

Wensick, A.J., (1982) *Muhammad and the Jew s of Medina*, Adiyok berlin.